विन्चेस्टर—इनके मत से काव्य की सृष्टि ४ मूल तत्वों से होती है।

(i) Emotional Element अर्थात् भावात्मक तत्व जिसके अन्तर्गत रस आता है।

(ii) Intellectual Element अर्थात् बुद्धितत्व जिसके अन्तर्गत विचार की प्रधानता है।

(iii) Imagination अर्थात् कल्पना।

(iv) Formal Elements अर्थात् काव्याङ्ग जिसके अन्तर्गत भाषा, शैली, गुण और अलकार आदि आते है।

अल्फ्रेड लायल—"Poetry is the most intense expression of the dominant emotions and the higher ideas of the age". अर्थात् किसी युग के उच्चतर विचारो और शास्ता मनोभावो की गूढ़ अभिव्यक्ति अथवा प्रभावोत्पादक ढग से प्रकट कर देना ही कविता है।

जॉनस्टुअर्ट मिल—"What is poetry but the thought and wards in which emotion spontaneously embodies itself." अर्थात् कविता क्या है ! वह तो केवल के विचार उमेह शब्द है, जिनमें भाव स्वतः मूर्तिमान है।

मैकाले—"By poetry we mean the art of employing words insuch a manner as to produce on illusion on the imagination, the art of doing by means of words what the painter does by means of colours." अर्थात् काव्य से तात्पर्य उस कला से है, जो शब्दो का प्रयोग इस प्रकार करती है जिससे कल्पना पर भ्रान्ति का आरोप हो जाय, अर्थात् यह कला शब्दों के माध्यम से वही कार्य करती है जिसे चित्रकार रगो और कूँची के माध्यम से करता है।

टामस कार्लायल—Poetry is a musical thought अर्थात् कविता सगीतमय विचार है। (Heroes and Heroworship)

विलियम हेजलिट—"Poetry the language of the

imaginations and passions"—Lectures on the English Poets—अर्थात् काव्य भाव और कल्पना की भाषा है।

सैमुअल टेलर कॉलरिज—Poetry is the antithesis of Science having first immedeate object pleasure not firsts Biographic Litreria—अर्थात् काव्य विज्ञान का विलोम है जिसका आत्यन्तिक उद्देश्य आनन्द है सत्य प्राप्ति।

एडगर एलन पो—It is the rhythmic creation of beauty अर्थात् कविता सौंदर्य की कलात्मक सृष्टि है।

जान रस्किन—It is the suggestion by the imagination of the noble ground for the noble emotions —Modern Painters—अर्थात् कविता कल्पना के द्वारा रुचिर मनोवेगो के लिये रमणीय क्षेत्र प्रस्तुत करती है।

प्रोफेसर कोर्ट होप—The art of producing pleasure by the just expression of imaginative thought unmetrical language अर्थात् काव्य वह कला है जो छन्दोमयी भाषा मे कल्पना से अभिभूत विचारो और भावो की उचित अभिव्यक्ति कर आनन्द प्रदान करती है।

डब्ल्यू० एच० हडसन—An interpretation of life through imagination and feeling. अर्थात् भाव और कल्पना के द्वारा जीवन की व्याख्या ही काव्य है।

एबर क्राम्बि—Poetry is a communicapable experience through words अर्थात् काव्य भाषा के माध्यम से प्रेषणीय अनुभूति है।

लार्ड बायरन—Thus their extreme verge the passions brought, Dash in poetry, which is but passions अर्थात् जब मनुष्य की वासनायें या भावनाये अन्तिम सीमा पर पहुँच जाती है तब वे कविता का रूप धारण कर लेती है।

कवि ड्रायडन—Poetry is articulate music. कविता स्पष्ट सगीत है।

उपर्युक्त प्राच्य एव पाश्चात्य मनीषियो के निर्देशित काव्य लक्षणो पर विचार करने पर मै इस निष्कर्ष पर पहुचता हूँ कि उनके बताये लक्षणो एव परिभाषाओ मे से एक भी ऐसी नही है जो काव्य के पूर्ण स्वरूप की व्याख्या करने मे समर्थ हो, लगभग सभी एकागी है, कोई मस्तिष्क के योगदान मे अधिक विश्वास करता है तो कोई हृदय के योगदान मे, कही काव्य मे मनोमोहक शक्ति की प्रशसा की गयी है तो कही उसके रमणीय गुणो की, किसी ने भाव पर, किसी ने कल्पना पर, किसी ने रचना-विधान पर, किसी ने उद्दीपक शक्ति पर, किसी ने कवि की अन्तर्दृष्टि पर बल दिया है, कोई काव्य को आनन्दमूलक, कोई कलामूलक, कोई भावमूलक, कोई अनुभूतिमूलक, कोई जीवनवृत्तिमूलक और कोई हृदयोद्गारमूलक और कोई काव्य को युग की अभिव्यक्ति का माध्यम मानना है। काव्य मे भाषा, छन्द, सगीत, सत्य, सौन्दर्य, ज्ञान, रस और आनन्द को तो मुख्य स्थान लगभग सभी ने दिया ही है।

ऐसी स्थिति मे वस्तु-विवेचन की भिन्नता मे किसी एक निश्चित सिद्धान्त पर पहुँचा नही जा सकता। दोनो वर्गों के मनीषियो की उक्तियो के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि काव्य हृदय की वस्तु है, इस पर सौन्दर्य का परिधान होना चाहिये, साथ ही आनन्द का प्रदाता, किन्तु सर्वोपरि कवि की कल्पना का पुट लिये हुये भावुकतापूर्ण उक्ति जब श्रोता या पाठक के हृदय को छू जावे तभी वह काव्य है। ये काव्य मे सामयिक युग की अभिव्यक्ति होना उसके गुण मे निखार लाना है जोकि आवश्यक है। सक्षेप मे काव्य का विश्लेषण करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि काव्य का विषय प्रभावपूर्ण होना चाहिये ताकि मानव हृदय से पशुभाव अहभाव को निकालकर उसमे सच्चे मनुष्यत्व, विश्वबन्धुत्व का भाव प्रतिबिम्बित कर सके।

काव्य के भेद

काव्य के भेद तीन दृष्टियो से किय जा सकते है (१) गुण, (२) शैली, (३) प्रयोजन।

(१) गुण की दृष्टि से काव्य के ३ भेद किये जा सकते है · (अ) उत्तम काव्य, (ब) मध्यम काव्य (स) अधम काव्य।

ऐसे शब्दो मे ऐसे ढग से प्रकट किया जाय कि उसमे ससार के अन्य वस्तुओ की अपेक्षा, मोहनशक्ति, आकर्षण, रस और आनन्द अधिक हो।

[अ] **उत्तम काव्य**—प्रत्येक शब्द या पद का अपना एक अर्थ होता है जो काव्यार्थ कहलाता है, लेकिन कभी-कभी उसी शब्द या पद से एक दूसरा अर्थ भी निकलता है जिसकी ओर वे सकेत करते है जिसे व्यग्यार्थ कहते है। उत्तम काव्य मे व्यग्यार्थ वाच्यार्थ से अधिक चमत्कारी होता है। जैसे.—

अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल मे है दूध, और आँखों मे पानी॥

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने उक्त पक्तियाँ यशोधरा के वियोगावस्था एव तदनिहित नारी की विवशता की ओर सकेत करते हुये लिखा है कि नारी जीवन मे दो बातें मुख्य होती है—आँचल मे दूध और आँखो मे आँसू। व्यग्यार्थ है वात्सल्य और करुणा या वेदना। तो यशोधरा जहाँ एक ओर पुत्र राहुल के लिये वात्सल्य उडेल रही है, वही दूसरी ओर सिद्धार्थ के लिये विरह वेदना के कारण आँखो मे आँसू भी लिये है। इस प्रकार यहाँ व्यग्यार्थ मे चमत्कार है।

[ब] **मध्यम काव्य**—जहाँ व्यग्यार्थ गौण हो जाता है अथवा व्यग्यार्थ और वाच्यार्थ समान कोटि के हो। व्यग्यार्थ अप्रधान रहने के कारण इसे गुणीभूत व्यग्य भी कहते है। जैसे·—

रघुवर बिरहानल तपे, सह्य शैल के अन्त।
सुख सों सोये शिशिर मे, कपि कोपे हनुमन्त॥

अर्थात् वाच्यार्थ की दृष्टि से "जाडे के मौसम में राम की विरहाग्नि से तपे हुये सह्य नामक पर्वत पर सुख से सोये हुये वानर हनुमान पर क्रोधित हुये। व्यग्याथ की दृष्टि से "हनुमान के द्वारा सीता का कुशल समाचार सुनकर राम की विरह ज्वाला शान्त हो गयी, फलस्वरूप सह्य पर्वत पर शीत की अधिकता का अनुभव कर वानरगण हनुमान पर कुपित हुए।" यहाँ व्यग्यार्थ से स्पष्ट होने पर ही हनुमान पर वानरो का कोप' सगत सिद्ध हुआ, अत वाच्य· साधक होने के कारण व्यग्यार्थ गौण हो गया।

[स] **अधम काव्य**—जब काव्य मे केवल वाच्यार्थ मे ही चमत्कार पाया

जाता है और व्यग्यार्थ का नितान्त अभाव रहता है, तब अधम या चित्र काव्य कहलाता है, जैसे —

अंगद कूदि गये जहाँ, आसनगत लकेश।
मन मधुकर करहाट पर, शोभित श्यामल वेश॥

उपर्युक्त पद मे अन्तिम पक्ति मे केवल अर्थ चमत्कार है, व्यग्यार्थब्य अभाव है।

(२) **शैली की दृष्टि** से काव्य के तीन भेद किये गये है •(अ) गद्य, (ब) पद्य, (स) चम्पू।

अ—गद्य

गद्य वह शैली है जिससे व्याकरण के नियमो का पूर्णत पालन करते हुये वाक्यो का विन्यास किया जाता है। गद्य मे रागात्मिका वृत्तियो को ही नही, बोधात्मक वृत्तियो की भी प्रश्रय मिलता है। इस शैली मे हृदगत बातो को विस्तृत रूप से प्रकट करने का क्षेत्र विशद् है। इसके अन्तर्गत, निबन्ध, उपन्यास कहानी आदि आते है।

ब—पद्य

पिगल शास्त्र के नियमो से आबद्ध रचना को पद्य कहते है। इसमे साधारण तुकबन्दी से लेकर गम्भीर और सरस रचनाओ तक का समावेश होता है साथ ही छन्दो का विधान होता है। इसमे रचयिता अर्थात् कवि को यह छूट दे दी जाती है कि वह भाषा और व्याकरण के सामान्य स्वीकृत नियमो का उल्लघन कर सकता है तथा अपनी सुविधानुसार तोडमरोड सकता है।

स—चम्पू

"गद्य पद्यमय काव्य चम्पूरित्यभिधीयते" अर्थात् ऐसी रचनाये जिनमे गद्य और पद्य दोनो शैलियो का मिश्रित या सम्मिलित रूप हो जैसे सस्कृत मे "देशराज चरित" और हिन्दी मे प्रसाद के चित्राधार मे सग्रहीत उर्वशी और बभ्रुवाहन, अनूप शर्मा का 'फेरि मिलिके' आदि। सस्कृत मे अनेक चम्पू काव्य मिलते है किन्तु हिन्दी मे यह परम्परा प्रचार न पा सकी।

(३) प्रयोजन या स्वरूप की दृष्टि से काव्य के दो भेद है (अ) श्रव्य-काव्य, (ब) दृश्य काव्य ।

अ—श्रव्य-काव्य

श्रव्य काव्य की रसानुभूति श्रवण या पठन से होती है। इस काव्य के अन्तर्गत महाकाव्य, खण्डकाव्य और मुक्तककाव्य आते है।

(1) महाकाव्य

किसी महापुरुष या आदर्श पुरुष के समस्त जीवन-वृत्त के आधार पर की गई रचना को महाकाव्य कहते है। नायक धीरोदात्त श्रेणी का होना चाहिये एव उसका लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन ४ पदार्थों मे किसी एक की प्राप्ति होना चाहिये। शृगार व वीर रस की प्रधानता रहती है। महाकाव्य का सर्गबद्ध होना आवश्यक है—कम से कम ८ सर्ग। उदाहरण :—

(४) तुलसीदास—रामचरितमानस (२) हरिऔध—प्रियप्रवास
(३) मैथिलीशरणगुप्त—साकेत (१) प्रसाद—कामायनी
(५) द्वारिकाप्रसादमिश्र—कृष्णायन (६) रामकुमार वर्मा—एकलव्य
(७) गिरिश—ताडक-वध (८) परमेश्वरद्विरेफ—मीरा

(11) खण्ड-काव्य

जीवन की छोटी-छोटी घटनाओ को लेकर खण्ड काव्य की रचना की जाती हैं जोकि अपने मे स्वय पूर्ण होती है। इसमे प्राय. जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना या दृश्य का मार्मिक उद्घाटन होता है और अन्य प्रसग सक्षेप मे रहते है। उदाहरण —

(१) तुलसीदास—पार्वतीमगल (२) प्रसाद—आँसू
(३) मैथिलीशरणगुप्त—यशोधरा, पचवटी (४) द्विरेफ—कमला नेहरू

(111) मुक्तक-काव्य

जिसके अन्तर्गत रचना के विभिन्न छन्दो मे किसी प्रकार की किसी विचार या कथा की धारा या शृंखला न पायी जावे और प्रत्येक छन्द स्वय मे पूर्ण और निरपेक्ष हो। इसके प्रत्येक छन्द स्वच्छन्द होते हैं, जैसे—सूरसागर, विनयपत्रिका, बिहारी सतसई आदि।

ब—दृश्य-काव्य

इस काव्य की रसानुभूति अभिनयादि के देखने से होती है। इसका रसास्वादन पठित और अपठित दोनो वर्ग कर सकते है।

इसके अन्तर्गत रूपक और उपरूपक आते है।

रूपक के १० भेद होते है

(१) नाटक (२) प्रकरण (३) भाण (४) प्रहसन (५) डिम (६) व्यायोग (७) समवकार (८) बीथी (९) ईहामृग (१०) अक।

(१) **नाटक**—इसमे इतिहास-प्रसिद्ध कथा होती है। नायक धीर, गम्भीर, उदात्त, प्रतापी, गुणवान राजा, राजर्षि या दिव्य-पुरुष होता है। प्रधान रस वीर या शृंगार रस होता है और अन्य रस सहायक रूप मे। ५ से लेकर १० अक तक होते है; किन्तु ५ से अधिक अक वाले महानाटक कहलाते है। अक उत्तरोत्तर छोटा होना चाहिये।

(२) **प्रकरण**—कथावस्तु लौकिक और कवि-कल्पित होती है। नायक ब्राह्मण, धनी अथवा वैश्य होता है। शृंगाररस प्रधान, अन्य रस सहायक रूप मे प्रयुक्त होते है। नायिका वेश्या या कुल कन्या होती है। नायक धर्म, अर्थ काम में पारायण रहकर मनोरथ मे सफल होता है।

उदाहरणार्थ—मालती माधव

(३) **भाण**—इसमे एक ही अक और एक ही पात्र होता है। वह रंगमच पर अपनी या दूसरो की अनुभूत बातो को कथोपकथन के रूप मे आकाश भाकित के द्वारा प्रकाशित करता है। इसमे धूर्तों का ही चरित अनेक अवस्थाओ मे व्याप्त दिखाया जाता है। जैसे—वैदिकी हिसा हिंसा न भवति।

(४) **प्रहसन**—यह भी भाण के ही समान होता है हास्य रस की अधिकता होती है। नायक के रूप मे सन्यासी, तपस्वी, नपुसक या कचुकी आदि की योजना की जाती है।

(५) **डिम**—इसमे पुराण या इतिहास प्रसिद्ध कथा होती है जिसमें माया-इन्द्रजाल, क्रोध सग्राम, उन्मत्त आदि की चेष्टाओ का समावेश रहता है। रौद्ररस प्रधान और शान्त, हास्य, शृंगार के अतिरिक्त अन्य रस सहायक होते

है । ४ अक होता है । देवता, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, भूत, प्रेत, पिशाच, महोरग आदि उद्धत १६ नायक होते है ।

(६) व्यायोग – इसका कथानिक भी इतिहास या पुराण-प्रसिद्ध होता है, किन्तु नायक धीरोदात्त, राजर्षि या दिव्य पुरुष होता है । पात्रो की अधिकता रहती है लेकिन स्त्रीपात्र एक भी नही । एक ही अक और एक ही दिन का वृत्तान्त होता है। युद्ध होता है किन्तु स्त्री के कारण नही ।

(७) समवकार—इसमे देवताओ और असुरो से सबधित घटना का वर्णन होता है । ३ अक होते है और १२ देवासुर नायक । वीर रस मुख्य होता, अन्य रस पुष्टि करते है ।

(८ बीथी—इसमे एक अक होता है । उत्तम, मध्यम और अधम मे से कोई एक पुरुष नायक कल्पित कर लिया जाता है । शृङ्गार रस की अधिकता भाण की तरह आकाशभाषित द्वारा उक्ति प्रत्युक्ति होती है ।

(९) ईहामृग—कुछ ऐतिहासिक और कुछ कल्पित मिश्रित वृत्तान्त होते हैं । एक अक होता है । नायक और प्रतिनायक प्रसिद्ध धीरोद्धत पुरुष होता है ।

(१०) अक—एक अक होता है, वृत्तान्त प्रख्यात, नायक साधारण पुरुष । स्त्रियो के विलाप को अधिकता के कारण करुण रस प्रधान होता है ।

उपरूपक के १८ भेद होते है

(१) नाटिका (२) चोटक (३) गोष्ठी (४) सट्टक (५) नाट्यरासक (६) प्रस्थानक (७) उल्लाप्य (८) काव्य (९) रासक (१०) प्रेक्षण (११) सलापक (१२) श्रीगदित (१३) शिल्पक (१४) विलासिका (१५) दुर्मल्लिका (१६) प्रकरणिका (१७) हल्लीश (१८) भाणिका ।

उपरूपक

(१) नाटिका—इसमे चार अक होते है । अधिकाश पात्र स्त्रिया होती हैं । नायक धीर-ललित राजा होता हे । नायिका रनिवास से सम्बन्द्ध राजवश की कोई गायन-पटु अनुरागवती कन्या होती है ।

(२) चोटक—इसमे पाच, सात, आठ या नौ अङ्क होते है । प्रत्येक अङ्क मे विदूषक का व्यापार रहना है । शृगार रस प्रधान होता है ।

(३) गोष्ठी—इसमे एक ही अङ्क होता है । पाच-छह स्त्रियो और नौ-दस

मनुष्यो का व्यापार रहता है। वासनामय काम) शृ गार की प्रधानता रहती है।

(४) सट्टक—इसकी रचना प्राकृत मे मानी गई है। इसमे अद्भुत रस रहता है। अङ्को को 'जवनिका' कहते है, अन्य बाते नाटिका के सदृश होती है।

(५) नाट्यरासक—इसमे एक ही अङ्क होता है। शृ गार सहित हास्य रस प्रधान रहता है। नायक उदात्त, उपनायक पीठमर्द तथा नायिका वासक सज्जा होती है।

(६) प्रस्थानक—इसमे दो अङ्क होते है। नायक दास और उपनायक हीन पुरुष होता है। नायिका दासी होती है।

(७) उल्लाप्य – इसमे एक अङ्क, दिव्य कथा, धोरी दस्त नायक, तथा हास्य शृ गार एव करुण रस होते है। कुछ लोग इसमे तीन अङ्क मानते है।

(८) काव्य—इसमे एक अङ्क और हस्य रस होता है। गीतो की अधिकता होती है।

(९) रासक—इसमे भी एक ही अङ्क होता है। पाच पात्र होते है, सूत्राधार नही होता। नायिका प्रसिद्ध और नायक मूर्ख होता है। इसमे उदात्तभाव उत्तरोत्तर प्रदर्शित किए जाते हैं।

(१०) प्रेक्षण—इसमे भी एक ही अङ्क होता है। नायक हीन पुरुष होता है। इसमे सूत्राधार नही होता। नान्दी तथा प्ररोचना नेपथ्य से पढ़ी जाती है।

(११) सलापक—इसमे तीन या चार अङ्क होते है। नायक पाखडी होता है। शृ गार और करुण रस नही होते। इसमे नगर के घेरे, सग्राम आदि-का वर्णन रहता है।

(१२) श्रीगदित—इसमे कथा प्रसिद्ध होती हे। यह एक अङ्क का होता है। नायक धीरोदात्त और नायिका प्रख्यात होती है।

(१३) शिल्पक—इसमे चार अङ्क होते है। शान्त और हास्य के अतिरिक्त अन्य रस होते है। नायक ब्राह्मण होता है। इसमे मरघट मुर्दे आदि का वर्णन रहता है।

(१४) बिलासिका—यह शृंगार-बहुल, एक अङ्क वाली विदूषक विटपीठ मर्द से विभूषित, हीन गुण-नायक से मुक्त, छोटी कथावली होती है।

(१५) दुर्मल्लिका—इसमे चार अङ्क होते है। पहले अङ्क मे विट की क्रीडा, दूसरे मे विदूषक का विलास, तीसरे मे पीठमर्द का विलास व्यापार और चौथे मे नागरिको की क्रीडा रहती है। इन चारो अङ्को का व्यापार क्रमश ६, १०, १२ और २० घडी का रहता है। इसमे पुरुष पात्र सब चतुर होते है पर नायक छोटी जाति का होता है।

(१६) प्रकरणिका—इसमे नायक व्यापारी होता है। नायिका उसकी सजातीय होती है शेष बातो मे यह 'प्रकरण' के सदृश होती है।

(१७) हल्लीश—इसमे एक ही अङ्क होता है। सात से दस तक स्त्रिया होती है और एक उदात्त वचन बोलने वाला पुरुष रहता है। इसमे गाने, ताल और लय अधिक होते है।

(१८) भणिका—इसमे भी एक अङ्क होता है। नायक मन्दमति तथा नायिका उदात्त होती है।

शब्द-शक्ति

शब्दविहीन अर्थ एव अर्थविहीन शब्द की कल्पना साहित्य के काव्य प्रदीप के अन्तर्गत की ही नही जा सकती। व्यग्यार्थ और वाच्यार्थ को समझने के लिये शब्द शक्ति का ज्ञान होना आवश्यक है। वर्णों के समूह को शब्द कहते है, अतएव जिसके द्वारा शब्द के अर्थ की प्रतीति या बोध हो उसे शब्द-शक्ति कहते है।
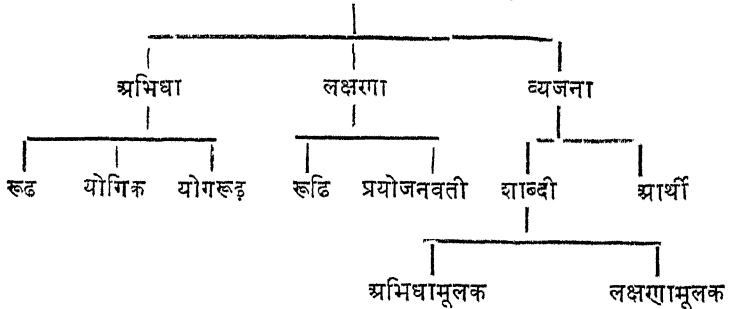
१—अभिधा

शब्द को सुनते ही सब से प्रथम जिस अर्थ का बोध होता है उके वाच्यार्थ कहते हैं और वाच्यार्थ को कहने वाला शब्द वाचक कहलाता है एव जिस शक्ति के द्वारा यह अर्थ बोधगम्य होता है उसे 'अभिधा' शक्ति कहते है। अभिधा वाक्य के अन्तर्गत किसी शब्द के केवल सकेतित अर्थ का बोध कराती है। अभिधा के द्वारा अर्थ निश्चित रहता है तथापि उसमे कल्पना आदि का चमत्कार रहता है जैसे.—

अभिधा शक्ति द्वारा जिन वाचक या सशक्त शब्दो का अर्द ज्ञात होता है वे ३ प्रकार के होते है।

सोहत ओढ़े पीतपट, स्याम सलोने गात ।
मनो नीलमणि सैल पर, आतप परयो प्रभात ॥

(अ रूढ़—इन शब्दो की व्युत्पत्ति नही होती अर्थात् जिन शब्दो के प्रयोग किये जाने पर किसी विशेष प्रसिद्ध अर्थ का बोध होता है, जैसे—पेड, गाय, घोडा घडा, आदि।

(आ) योगिक—जिसमे प्रकृति और प्रत्यय का योग सम्मिलन होकर समुदयार्थ की प्रतीति हो अर्थात् जिन शब्दो के टुकडे करके प्रत्येक टुकडे का अलग-अलग अर्थ करते हुये फिर समूचे शब्द के अर्थ का बोध हो, जेसे—भूपति, सुधाशु आदि। भू = पृथ्वी + पति = स्वामी = राजा या जमीदार, सुधा = अमृत + अशु = किरण = चन्द्रमा।

(इ) योगरूढ़—जिसमे अग-शक्ति और समूह-शक्ति दोनो का सम्मिश्रण हो अर्थात् जिन शब्दो के खण्डो के अर्थ मे बोध होने वाली सभी वस्तुओ के लिये उस शब्द का प्रयोग न करके किसी एक विशेष प्रसिद्ध वस्तु के लिये प्रयोग किया जाय। जैसे—गणनायक, पकज आदि।

गण + नायक = किसी गण का नेता किन्तु प्रसिद्ध बोध करने वाला अर्थ है गणेश।

पक + ज = कीचड मे जन्म लेने वाले कीडे मकोडे आदि नही बल्कि कमल।

महाकवि देव के अनुसार उत्तम काव्य अभिधा मे ही रहता है, क्योकि इससे ही रसकी निष्पत्ति होती है। वह कहते है :—

अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणालीन।
अधम व्यंजना रस विरस, उलटी कहत नवीन॥

२—लक्षणा

जिस शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ लक्षित हो अर्थात् जिन शब्दो का मुख्यार्थ न लेकर उसी से सम्बन्धित कोई दूसरा अर्थ लक्षित हो जो कि रूढ अथवा प्रसिद्ध हो। शास्त्र मे इसके ८० भेद बताये गये है, किन्तु मुख्य दो है।

(अ) रूढ़ि—जिसमे प्रसिद्धि के कारण मुख्यार्थ को छोडकर उससे सम्बन्धित दूसरा अर्थ ग्रहण किया जावे, जैसे—"पजाब लडाका" है अथवा "भारत साहसी है" मे पजाब प्रदेश या भारत लडाका या साहसी नही हो सकता अतएव इनसे सम्बन्धित पजाब के निवासियो अथवा भारतवासी का अर्थ लिया जायेगा।

(आ) प्रयोजनवती—जहाँ किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिये लक्षणा की जाय अर्थात् अर्थ लगाया जावे, अथवा जहाँ किसी विशेष प्रकार के प्रयोजन या अभिप्राय को व्यजित करने के लिये शब्द का अर्थ लिया जाता है जसे—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल मे है दूध और आँखों मे पानी॥

इसमें आँचल मे दूध का होना—मुख्यार्थ मे बाधा पडती है अतएव सामीप्य के कारण स्तन मे दूध का होना लक्ष्यार्थ लिया जाता है जिसका प्रयोजन है मातृत्व का आधिक्य। आगे लक्षणा के अन्य दो भेद माने गये है :—

(१) गौणी (२) शुद्धा।

(१) गौणी लक्षणा मे समान गुण धर्म और सादृश्यता के द्वारा लक्ष्यार्थ का ज्ञान होता है जैसे 'पुरुष सिंह है'। इस उदाहरण मे समान गुण के

कारण सिह के समान बलवान पुरुष का बोध होता है।

गौणी लक्षणा के दो भेद माने गये हैं—(क) सारोपा (ख) साध्यवसाना

(क) **सारोपा**—इसमे उपमेय और उपमान दोनो मौजूद होते है जैसे पुरुष (उपमेय) सिह (उपमान) है।

> खेल खेल थक थक सोने दो।
> मै समझूँगी सृष्टि प्रलय क्या॥

(ख) **साध्यवसाना**—जहाँ उपमेय का कथन न होकर केवल उपमान का कथन होता है। जैसे "सिह अखाडे मे उतरा"

> बैरिनि कहा बिछावती फिर फिर सेज कृसान?
> सुनो न मेरे प्राणधन, चहत आज कहुँ जान॥

(२) **शुद्धा**—जहाँ सादृश्य सम्बन्ध के अतिरिक्त किसी अन्य सम्बन्ध से लक्ष्यार्थ का ज्ञान होना है। जैसे "**लाल पगडी के आते ही भीड छट गयी**।" यहाँ पर लाल पगडी का साहचर्य सम्बन्ध पुलिस सिपाही से है। यथा

> चाहे जितना अर्घ्य चढ़ाओ पत्थर पिघल नही सकता।
> चाहे जितना दूध पिलाओ, अहि विष निकल नहीं सकता॥

शुद्धा लक्षणा के भी दो भेद मुख्य होते है—(क) लक्षण (ख) उपादान

(क) **लक्षण**—जहाँ पर मुख्यार्थ की बाधा होने पर वाक्यार्थ की सिद्धि के लिये प्रसगानुकूल मुख्यार्थ का नितान्त त्याग कर सादृश्य के अतिरिक्त अन्य सम्बन्धो के सहारे भिन्न अर्थ ग्रहण किया जाता है जैसे —

> मोहि दीन्ह सुख सुजस सुराजू। कीन्ह कैकेयी सबकर काजू॥
> एहि ते मोर कहा अब नीका। तेहि पर देन चहहु तुम टीका॥

(ख) **उपादान**—जहाँ मुख्यार्थ की बाधा होने पर और वाक्यार्थ की सगति के लिये अन्य अर्थ लक्षित होने पर भी अपना निजी अर्थ न छूटे। जैसे —

> मै हूँ बहिन किन्तु भाई नही है।
> राखी सजी पर कलाई नहीं है॥

३—व्यंजना

अभिधा और लक्षणा द्वारा जिस शब्द का अर्थ उपलब्ध नही होता, बल्कि एक दूसरा ही अप्रकट अर्थ लिया जाय उन्हे व्यजक शब्द कहते है और जिम शक्ति द्वारा व्यग्यार्थ का बोध होता है वह व्यजना कहलाता है।

इसके दो प्रमुख भेद है

(अ) शाब्दी—जहाँ व्यजना का आधार शब्द होता है, जैसे—

चिर जीवो जोरी जुरै क्यो न सनेह गभीर।
को घटि ये बृषभानुजा, वै हलधर के वीर॥

बृषभानुजा = गाय और राधा, हलधर = बैल और बलराम। इसके भी दो भेद है —

(क) अभिधामूलक—जहाँ सयोगादि के द्वारा अनेकार्थी शब्दो का अभिधा के द्वारा एक अर्थ निश्चय हो जाने पर भी कोई अन्य अद्भुत अर्थ निकले। उदाहरण :—

(१) नग सूनो बिन मूँदरी।

'नग का अर्थ नगीना और पर्वत दोनो होता है, किन्तु मूँदरी के साहचर्य्य के कारण नगीना का अर्थ होगा।

(२) हरि के चढते ही उडे सब द्विज एके साथ।

हरि का अर्थ विष्णु, बन्दर, सिह आदि होता है और द्विज का अर्थ ब्राह्मण और पक्षी आदि किन्तु 'चढने' और 'उडने' की क्रिया के साहचर्य्य से बन्दर और पक्षी का अर्थ ही होगा।

(ख) लक्षणामूलक—जहाँ लक्ष्यार्थ द्वारा एक अर्थ का निश्चय हो जावे फिर भी कोई दूसरा अद्भुत अर्थ निकले वहाँ लक्षणामूलक व्यजना होती है। उदाहरण —

"कूकती कोइलिया कानन लौं नहि जाति सह्यौ तिन की सुअवाजे।
भूमितै लैके अकाश लौं फूलै, पलास दवानल की छवि छाजै॥
आये बसन्त नहीं घर कन्त लगी, सब अन्त की होने इलाजैं।
बैठी रही हूँ हम हिय हारि कहा लगि टारिये हाथन गाजे।"

इस कविता मे बसन्त आगमन पर किसी नायिका का विरह-वर्णन है। जिसमे वेदना की अतिशयता व्यग्य है। दुख के रोकने के सभी उपायो को नायिका हाथ से वज्र रोकना समझ बैठी है जो सम्भव नही है।

(आ) **आर्थी**—जहाँ व्यजना अर्थ पर निर्भर होती है। इस के ११ भेद माने गये है।

(१) वक्तृवैशिष्य (२) बोधव्य (३) वाक्य (४) काकु (५) प्रस्ताव (६) वाच्य (७) देश (८) काल (९) अन्य सान्निध्य (१०) चेष्टा (११) अनेक वैशिष्ट्य।

उदाहरण—

(१) "मै सुकुमारि नाथ बन जोगू
तुमहि उचित तप मो कहँ जोगू।"

इसमे व्यग्यार्थ कि मैं ही सुकुमार नही आप भी सुकुमार हैं।

(२) कंटक काढत लाल के चंचल चाह निबाहि।
चरन खैंचि लीनो तिया हँसि झूठे करि आहि॥

यहाँ झूठ-मूठ आह भर के और हँस कर चरन खीच लेने से नायिका का हाव-भाव व्यग्य है।

ध्वनि

जब शब्दार्थ अपने निजी अर्थ को छोडकर जिस व्यग्यार्थ या विशेषार्थ से काव्य मे विशेषता प्रकट करता है उसे ध्वनि कहते है।[1] जैसे —

"जो वाके तन की दसा देख्यौ चाहत आप।
तौ वलि नैकु बिलोकिये चलि औचक चुपचाप॥"

यहाँ 'औचक चुपचाप' का अर्थ है अचानक और चुपचाप चलकर जाना।

इसके मुख्य दो भेद माने गये हैं

१—यचार्थ .शब्दों वा तमर्थम्रह सर्जनी कृत स्वार्थो।
व्यक्तं काव्य विशेषः ध्वनिरिति सूरभि कथित.॥

(क) **संलक्ष्यक्रमध्वनि**—जहाँ व्यंग्यार्थ अथवा विशेषार्थ तक पहुँचने का क्रम लक्षित हो।

उदाहरण —

"कहा लडैते दृग करै, परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली, कहुँ पीतपट, कहूँ मुकुट बनमाल॥"

यहाँ व्याजस्तुति अलकार है कि ऊपर से बडाई मालूम पडती है किन्तु अन्दर से निन्दा है कि तूने क्या लडाकू नेत्र धारण कर रखे हैं जिसकी चोट खाकर बेचारे कृष्ण अभी तक बेहाल पडे है।

(ख) **असलक्ष्यक्रमध्वनि**—जहाँ व्यग्यार्थ अथवा विशेषार्थ तक पहुँचने का क्रम लक्षित न हो।

उदाहरण —

"रहिमन कबहुँ बडेन के, नाहि गर्व को लेश।
भार धरै संसार को, तऊ कहावत शेष॥"

इस उक्ति मे बडे व्यक्तियो की प्रशसा निहित है किन्तु क्रम अलक्षित है।

इसके अन्तर्गत रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावशान्ति, भावसन्धि, भावोदय और भावशबलता माने गये है। जिनका वर्णन रस के प्रकरण मे है।

———

अलंकार

सौन्दर्य किसे प्रिय नही है। व्यक्ति अपने दैनिक जीवन मे, वातावरण मे, आचार व्यवहार, वेष भूषा मे स्वभावत. सौन्दर्यप्रिय होता है। अलकार का उपयोग सौन्दर्य वृद्धि के लिये ही होता है। यह सौन्दर्य चाहे भावो का हो अथवा अभिव्यक्ति का। अलकार जहाँ एक और भावो को सजाने, रमणीयता प्रदान करने मे योग देते है वही दूसरी ओर भावाभिव्यक्ति को प्राजल बना प्रभावशाली भी बनाते है। किसी तथ्य, अनुभूति, घटना या चरित्र की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिये अलकारो की उपयोगिता होती है। उदाहरणार्थ नीचे लोकगीत की दो पक्तियो मे उपमा और उदाहरण का कितना सुन्दर समन्वय हे :—

> ' लोहवा जरै जैसे लोहरा दुकनिया रे ना।
> मोरी बहिनी जरै ससुररिया रे ना॥

लोहार की भट्टी मे जिस प्रकार लोहा तिल-तिल कर जलता है उसी प्रकार भाई की लाडली बहिन ससुराल मे सुबक-सुबक कर जी रही है इसका कितना ममस्पर्शी विवरण है।

अलकार वाणी को विभूषित करने वाली है। सामान्य कथ्य भी अलकारों से भूषित होकर मनोहरता विशेष से युक्त हो जाती है। अतएव हम कह सकते है कि अलकार कथन की ललित भगिमा है अथवा अलकार साधारण कथन न होकर चमत्कारपूर्ण युक्ति है।

अनादिकाल से वेदो, वाल्मीकीय रामायण, महाभारत और पुराण आदि ग्रन्थो मे अलकारात्मक वर्णन यथेष्ट मिलते है। मानव प्रकृति से ही सजावट और शृङ्गार का प्रेमी है। प्राकृतिक और वास्तविक सौन्दर्य के साथ-ही साथ यदि उसको और अधिक भूषित करने के वाह्य साधन यदि वह जुटा पाता है तो इस प्रकार के भूषित सौन्दर्य को देखकर वह अधिक प्रसन्न होता है। रूप-सज्जा, शृङ्गार, बोलचाल, भाषा, व्यवहार, कहने का तात्पर्य यह है कि

जीवन के दैनिक कार्य-व्यवहार में मनुष्य अलकार अथवा वाह्य आडम्बर का प्रेमी होता है।

साहित्य मे भी अलंकार का महत्वपूर्ण स्थान है। काव्यालकार सूत्र कहा हैं:—

युवतेरिवरूपमगकाव्य, स्वदते शुद्धगुण तदप्यतीव।
विहित प्रणयनिरन्तराभि, सदलकारविकल्पनाभि॥

अर्थात्—"काव्य युवती के रूप के समान है, वह शुद्ध गुणयुक्त होने पर तो रुचिकर होता ही है तथापि रत्न-आभूषणो से सज्जित हो जाने पर रसिक जनो को अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होती है, उसी प्रकार गुणयुक्त काव्य भी अलकारो से युक्त हो जाने पर काव्य-मर्मज्ञो के चित को अत्यन्त आह्लाद प्रदान करता है।

काव्य मे ध्वनि, रस, गुण और अलकार महत्वपूर्ण स्थान रखते है, जिसमे प्रथम स्थान ध्वनि को, द्वितीय रस को तथा तृतीय स्थान अलकार को दिया जाता है। सस्कृत तथा हिन्दी के सभी आचार्यो ने अलकार को काव्य का आवश्यक अग माना है। भरत मुनि ने कहा है कि ध्वनि का सर्वोच्च स्थान होते हुये भी काव्य का शब्द-सौन्दर्य और मनोहरता अलकार पर ही निर्भर है।[1] अलम् का अर्थ है आभूषण अतएव जो भूषित या अलकृत करे वही अलकार है। जिसके द्वारा अलकृत किया जाय इस कारण व्युत्पत्ति से उपमा आदि का ग्रहण हो जाता है।[2]

ध्वनिकार मम्मट की उक्ति है कि कहने के निराले ढग अनन्त है और उनके प्रकार ही अलकार है।[3] आचार्य रुद्रट कहते है "कवि प्रतिभा से

---

१. अलकरणमीनामर्थालिकारमिष्यते।
त विना शब्द सौन्दर्यमपि नास्ति मनोहरम् —अग्निपुराण

२. "अलकृति' अलकार। करणव्युत्पत्या पुन अलकार शब्दोऽय मुपमादिषुवर्तते।" —वामन वृत्ति

३. अनन्ताहि नाग्विकल्पा, तत्प्रकारा एव चालकारा'। —ध्वन्यालोक

प्रादुर्भूत कथन विशेष ही अलकार है। [1] **आचार्य कुन्तल** कहते है "विदग्धो के कहने के ढग ही वक्रोक्ति है और वही अलकार है [2] **वामन** का कथन है कि अलकार के ही कारण काव्य ग्राह्य है और अलकार सौन्दर्य है।" [3] दण्डी ने तो अलकार को काव्य का शोभाकारक धर्म माना है[4] और साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ का विश्वास है कि "शब्द और अर्थ के सौन्दर्य की विभूति के बढाने वाले धर्म ही अलकार[5]।"

इस प्रकार भावो का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओ के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने म कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति ही अलकार है।

डा० भगीरथ मिश्र ने अलकारो के प्रयोग निम्नलिखित प्रधान परिस्थितिया मानी है —

(क) जहाँ पर हम किसी तथ्य वस्तु या चरित्र के स्वरूप को प्रगट करना चाहते है वहाँ अप्रस्तुत की योजना करन मे अलकार का प्रयोग होता है।

(ख) जहाँ किसी प्रभाव को स्पष्ट करना चाहते है वहाँ पर हम बल, निषेध अत्युक्ति कार्य कारण सबध, हेतु कल्पना आदि के द्वारा अपना काम चलाते है और इस प्रकार अलकार आ जाते है।

(ग) कही क्रम, असगति तथा सज्ञा विशेषण क्रिया आदि के चमत्कारिक प्रयोग मे अलकार रहते है।

(घ) कही विरोध या वैपरीत्य द्वारा हम कथन को प्रवीण बनाना चाहते है और अलकार का प्रयोग करते है।

---

१ अभिधान प्रकार विशेषा एव चालकार.। —अलकार सर्वस्व

२ उभावेतावलकार्यौ तय· पुनरलकृत.।
वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभगीभणितिरुच्यते। —वक्रोक्ति जीवित

३ काव्यग्राह्यमलकारात सौन्दर्यमलकार। — काव्यलकारसूत्र

४ काव्यशोभाकारान् धर्मान अलकारान् प्रचक्षते —काव्यदर्श

५ शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा. शोभातिशायिन। —साहित्यदर्पण

(ङ) कही हम निन्दा या प्रशसा मे दूसरा भाव छिपा कर व्यग्य से कुछ और कहना चाहते है और अलकार का समावेश हो जाता है।

(च) कही शब्द के ध्वनि या अर्थ सम्बन्धी चमत्कारिक प्रयोगो द्वारा अलकार की सृष्टि होती है। आदि आदि

डा० श्यामसुन्दरदास ने अलकार को 'शब्द और अर्थ को अस्थिर धर्म' माना है जबकि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अलकार की परिभाषा करते हुए लिखा है ·

"भावो का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओ के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने मे कभी कभी सहायक होने वाली युक्ति अलकार है।"

इस उपर्युक्त धाराओ पर विचार करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि अलकार का दो मुख्य काय है।

(१) भावो का उत्कर्ष दिखाना।

(२) वस्तुओ के रूपानुभव, गुणानुभव और क्रियानुभव को तीव्र करना।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त की अलकारिक भाषा अलकार की परिभाषा देखिये पल्लव की भूमिका मे ·

"अलकार केवल वाणी की सजावट नही वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार है। भाषा की पुष्टि के लिये राग की परिपूर्णता के लिये, आवश्यक उपादान है, वे वाणी के आचार, व्यवहार और रीति नीति है, पृथक स्थितियो के पृथक स्वरूप, भिन्न अवस्थाओ के भिन्न चित्र है। जैसे वाणी की झकारें विशेष घटना से टकराकर जैसे फेनाकार हो गयी हो। विशेष भावो के झोके खाकर बाल लहरिया तरुण तरगो मे फूट गयी हो, कल्पना के विशेष बहाव मे पड आवर्तो मे नृत्य करने लगो हो। वे वाणी के हास अश्रु, स्वप्न, पुलक हाव-भाव है। जहाँ भाषा की जालो केवल अलकारो के चाखटे से फिट करने के लिये बुनी जाती है वहाँ भावो की उदारता शब्दो की कृपण जडता के बँधकर सेनापति की दाता और सूम की तरह इकसार हो जाती है।"

आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार अलकार को शब्द और अर्थ का अस्थिर धर्म स्वीकार करने पर अलकारो के ३ भेद हो जाते है ·—
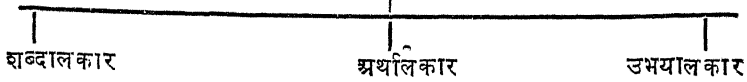
(१) शब्दालकार—शब्दो के कारण जहाँ चमत्कार उत्पन्न होता है ।

(२) अर्थालकार—कथन मे विशेष चमत्कार जब उत्पन्न किया जाता है ।

(३) उभयालंकार—जहाँ शब्द और अर्थ दोनो मे सौन्दर्य एव चातुर्य चमत्कार होता है ।

शब्दालंकार

शब्दो के कारण जहाॅ चमत्कार हो अर्थात् केवल कुछ शब्दो के कारण काव्य मे जहाॅ सुन्दरता आती है वहाँ शब्दालकार होता है ।

१—अनुप्रास

अनुप्रास का अर्थ है अनु=बारबार+प्र=पास पास+आस=रखना या आना । जहाँ पर व्यजनो की समता हो अथवा वर्णो या अक्षरो की आवृत्ति हो वहाॅ अनुप्रास अलकार होता है । इसके ५ भेद है
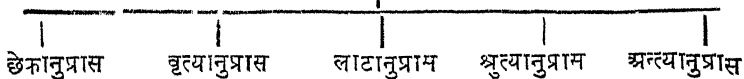
(क) छेकानुप्रास--जहाॅ एक या अनेक वर्णो की आवृत्ति केवल एक बार हो जैसे —

(1) बाधे द्वार काकरी, चतुर चित्त काकरी ।
सो उम्मिर वृथाकरी, न राम की कथा करी ।।

(ı) 'कुन्द इन्दु सम देह उमा रमण करुणा अयन ।
जाहि दीन पर नेह काहु कृपा मर्दन मयन ।।

—तुलसीदास

यहा कुन्द-इन्दु मे 'न्दु' की रमरा-करुणा मे 'र' और 'रा' की करहु-कृपा मे 'क' की मर्दन-मयन मे 'म' और 'न' वर्णो की आवृत्ति एक बार हुई है।

(ख) वृत्यानुप्रास—वृत्ति के अनुसार जहाँ एक अक्षर या अनेक अक्षरो की आवृत्ति दो या दो से अधिक बार आवृत्ति होती है। वृत्ति ३ प्रकार की होती है (i) उपनागरिका (ii) परुषा (iii) कोमला।

कूलन मे केलि मे, कछारन मे कुन्जन मे,
क्यारिन मे, कलिन, कलीन किलकत है।
कहै पद्माकर परागन मे, पौन हूँ मे,
पानन मे, पीक मे, पलासन पगत है॥

१—उपनागरिका वृत्ति—माधुर्य गुण की व्यजना करने वाले वर्ण टवर्ग को छोडकर और मानुनासिक वर्ण जिस कविता मे हो, जेसे —

(१) "रघुनद आनद कंद कोशल चन्द दशरथ नदनं।"
'न' और 'द' की आवृत्ति दो से अधिक बार की गई है।

"चन्दन चन्दन चाँदनी चन्द साल नव बाल।
चित ही चित चाहतु चतुर ये निदाघ के काल॥
यहाँ 'च' अक्षर की आवृत्ति अनेको बार की गयी है।

२—परुषा वृत्ति—ओज गुण की व्यजना करने वाले वर्णों की जहाँ दो या दो से अधिक बार आवृत्ति होती है, जैसे —

(१) मुंड कटत कहुँ रुंड नटत कहुँ सुंड पटत घन।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख वृद्धि रसत मन॥
पहली पक्ति मे 'ट' और 'ड' अक्षर की आवृत्ति दो से अधिक बार है।

(२) चिग्घत दिग्गज दिग्घ सिग्घ कुञ्ज चाल चलत दल।
कच्छ अच्छ खल मलत सफल उच्छलत जलधि जल॥
उपर्युक्त पक्तियो मे ओज व्यजक द्वित्व वर्णो का प्रयोग दो से अधिक बार है।

(३) कोमल वृत्यानुप्रास—जिस रचना मे कोमल अक्षरो की प्रधानता हो विशेषत: य, र, ल, व, स, ह, अक्षरो की। उदाहरणार्थ:—

(१) "फल फूलों से हैं लदी डालियाँ मेरी ।
वे हरी पत्तलें भरी थालियाँ मेरी ॥
मुनि बालायें हैं यहाँ आलियाँ मेरी ।
तटिनी की लहरें और तालियाँ मेरी ॥"
— गुप्त जी

'ल' और 'र' वर्ण की आवृत्ति दो से अधिक बार है ।

(२) "सत्य सनेह सील सुख सागर ॥"

(ग) **लाटानुप्रास**—जहाँ शब्द और अर्थ दोनो की आवृत्ति हो किन्तु अभिप्राय मे भिन्नता है, जैसे —

(१) पराधीन को है नही स्वाभिमान सुख स्वप्न ।
पराधीन जो है नही स्वाभिमान सुख स्वप्न ॥

अर्थात्—पराधीन व्यक्ति को स्वाभिमान का सुख-स्वप्न नही है और स्वाधीन व्यक्ति को स्वाभिमान का सुख-स्वप्न है ।

(२) राम हृदय जाके बसे विपति सुमगल ताहि ।
राम हृदय जाके नही विपत्ति सुमगल ताहि ॥

अर्थात्—जिसके हृदय मे राम का वास है उसके लिये विपत्ति भी सुमगल बन जाती है और जिसके हृदय मे राम का वास नही उसके लिये सुमगल भी विपत्ति बन जाती है ।

(घ) **श्रुत्यानुप्रास**—जहाँ तालु, कण्ठ, दन्त मूर्द्धा आदि स्थानो से उच्चरित होने वाले वर्णो की समता है, अर्थात मुख के भीतर किसी एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले वर्णों की आवृत्ति हो ।

कठ से उच्चरित वर्ण—क ख ग घ ङ, अ आ ह आदि ।

तालु से उच्चरित वर्ण— च छ ज झ ञ य श, इ ई आदि ।

दन्त से उच्चरित वर्ण—त थ द ध न ल स आदि ।

मूर्द्धा से उच्चरित वर्ण —ट ठ ड ढ ण, र, ष, आदि ।

उदाहरण :—

(१) खोलि इन नैननि निहारौ तौ निहारौ कहा,
सुखमा अभूत छाइ रही प्रति भौन भौन ॥

'न' दन्त से उच्चरित वर्ण की आवृत्ति है ।

(२) झाँक न झंझा के झोंके में झुक कर खुले झरोके से

'झ' वर्ण तालु स्थान का होने से श्रुत्यानुप्रास है

(ङ) अन्त्यानुप्रास—छन्द के अन्त मे जब अनुप्रास होता है, जैसे.—

(१) मूक होहि वाचालु, पगु चढ़े गिरिवर गहन ।
जासू कृपा सु दयालु, द्रवहु सकल कलि मल दहन ।।

(२) कुन्द इन्दु समदेहु, उमा रमा करुणा-अयन ।
जाहि दीन पर नेहु, करहु कृपा मर्दन मयन ।।

२—यमक

जहाँ निरर्थक वर्णो और सार्थक वर्णो एवं शब्दो की पुनरावृत्ति हो किन्तु हर बार अर्थ भिन्न हो वहाँ यमक अलंकार होता है, जैसे —

(१) ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहन वारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं ।
कन्द मूल भोग करैं कंद मूल भोग करैं,
तीन बेर खाती ते वै तीन बेर खाती है ।।
भूखन सिथिल अंग भूखन सिथिल अंग,
बिजन डोलाती ते वै बिजन डोलाती हैं ।
'भूषन' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं ।।

इस पद मे मन्दर, कन्दमूल बेर, भूखन, बिजन, और नगन शब्दो की पुनरावृत्ति हुई है किंतु अर्थ सभी का भिन्न है ।

मन्दर—१—राजमहल २—पर्वत

कन्दमूल—१—मिठाई, स्वादिष्ट भोजन २—कन्द और जड़े

बेर—१—बार २— बेर फल

भूखन—१—आभूषण २—भूख से

बिजन—१—पखा २—निर्जन स्थान, जगल

नगन—१—रत्न २—नगी

(२) भजन कह्यो तासो भज्या भज्यो न एकौ बार।
दूरि भजन जासो कह्यो सो तै भज्या गॅवार॥

'भजन' शब्द की आवृत्ति हुई है तथा दो अर्थ है।

१—भजन करना २—दूर भागना

(३) माला फेरत जुग गया, गया न मनका फेर।
कर का मनका डारि कै, मनका मनका फेर॥

१—माला २—मनका

निरर्थक वर्णो की आवृत्ति, जैसे—"कलोलकारी खग का कलोलना" मे 'कलोल' निरर्थक शब्दाश है। इस अलकार को अग्रेजी मे Pun कहते है तथा इसके सबसे अधिक भेद केशवदास ने अपनी 'कविप्रिया' मे दिये है।

३—श्लेष

'श्लेष' शब्द शिलष' धातु से बना है, अर्थ है चिपकना या मिलना। शिलष्ट शब्द मे एक से अधिक अर्थ चिपटे रहते है। इस प्रकार श्लेष अलकार वहाँ होता है जहाँ एक शब्द का प्रयोग एक ही बार हो किन्तु उसका एक से अधिक अर्थ निकाला जा सके, जैसे :—

"पानी गये न ऊबरै मोती मानुष चून"

पानी के ३ अर्थ है, १—कान्ति २—मर्यादा, प्रतिष्ठा ३—जल श्लेष अलकार के ३ भेद है :—

(क) अभंग श्लेष—जिसमे शब्दो के दो अर्थ करने के लिये उसका टुकडा न किया जावे,

(१) जो पहाड़ को तोड फोडकर बाहर कढ़ता,
निर्मल जीवन वही सदा जो आगे बढ़ता॥

जीवन—१—जिन्दगी २—जल

(२) कमला थिर न रहीम कह यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू क्यो न चंचला होय॥

(१) कमला—१—लक्ष्मी २—स्वछन्द स्त्री

(२) पुरुष पुरातन—१—विष्णु २—वृद्ध पुरुष

(ख) **सभंग श्लेष**—जिसमे शब्द के दो अर्थ करने के लिये टुकडे किये जायँ, जैसे —

(१) को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के वीर ।

वृषभानुजा=वृषभ+अनुजा=१—राधा २—बैल की बहन

हलधर=हल+धर=१—बलराम २—बैल

(ग) **अर्थ श्लेष**—जहाँ शब्दो का अर्थ तो एक ही होता है परन्तु दो या दो से अधिक पक्षो पर घटित होता है, जैसे —

जो जल बाढै नाव मे घर मे बाढै दाम ।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम ॥ —गिरिधर कवि

यहाँ 'दोनो हाथ उलीचिये' शब्द दो भिन्न अर्थो मे 'जल' और 'दाम' शब्दो के लिये प्रयुक्त हुआ है ।

४—वक्रोक्ति

जहाँ किसी की कही हुई बात का सुनने वाला भिन्न ही अर्थ लगावे वहाँ वक्रोक्ति अलकार होता है। भिन्न अर्थ की कल्पना दो प्रकार मे होती है, श्लेष द्वारा और काकु द्वारा ।

उदाहरण—श्लेष वक्रोक्ति—

(१) गौरवशालिनी प्यारी हमारी सदा तुमही इक इष्ट अहौ ।
हौ न गऊ नहीं हौ अवशा अलिनी हू नहीं अस काहे कहौ ॥

अर्थात महादेव जी पार्वती से कहते हे—हे महिमामयी गौरवशालिनी प्रिये तुम्ही सदा मेरी इष्ट हो तो पार्वती जानबूझ कर दूसरा अर्थ लेकर कहती हैं कि तुम मुझे गौरवशालिनी क्यो कहते हो क्योकि न तो मै गौ हूँ न अवशा (स्वच्छदचारिणी) और न आलिनी (भ्रमरी) ।

काकु वक्रोक्ति—

(१) मारो मत जाने दो ।

(अ) उसे छोडा न जावे अवश्य मारा जाय ।
उसे मारा न जाय अवश्य छोड दिया जावे ॥

(२) मैं सुकुमारि नाथ बन, जोगू ।
तुमहि उचित तप मो कहॅ भोगू ॥

५—वीप्सा

जहाँ आदर, घृणा, ताकीद, पश्चाताप, आश्चर्य अथवा अन्य आकस्मिक भाव प्रकट करने के लिये एक शब्द कई बार कहा जाय। उदाहरण—

आदर

(१) "राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।"

ताकीद

(२) "गुरुदेव जाता है समय, रक्षा करो। रक्षा करो।"

अथवा

(३) "बनि बनि बनि युवती चल
गनि गनि गनि डग देत।
धनि धनि धनि अँखियाँ सुछवि
सनि सनि सनि सुख लेत॥

(४) • भग्न उर पर भूधर सा हाय।
सुमुखि धर देती है साकार।

यहाँ 'हाय' में पश्चाताप है।

६—प्रहेलिका

जहाँ प्रश्न करने पर उसका उत्तर भी कतिपय शब्दो के हेरफेर मे उसी छन्द मे दिया हो। यह शब्दगत और अर्थगत दोनो ही होता है।

उदाहरण—

(१) देखी एक अनोखी नारी, गुन उसमें इक सबसे भारी।
पढ़ी नहीं यह अचरज आवै, मरना जीना तुरत बतावै।

उत्तर—नाडी

(२) ऐसी मूरि बताव सखि, जेहि जानत सब कोय।
पीठि लगावत जासुरस, छाती सीरी होय॥

यह अर्थगत प्रहेलिका है। उत्तर है—पुत्र।

७—पुनरुक्तिवदाभास

जहाँ समानार्थी प्रतीत होने वाले शब्द प्रयुक्त हो किन्तु अर्थ अलग-अलग

हो। उदाहरण —

(१) "समय जा रहा है और काल आ रहा,
सचमुच उलटा भाव भुवन मे छा रहा।"

समय और काल समानार्थी है किन्तु काल का अर्थ यहाँ पर मृत्यु है।

(२) "पुनि फिरि राम निकट सो आई।
प्रभु लछिमन पहुँ बहुरि पठाई।।"

यहाँ पुनि और फिरि समानार्थी होते हुये भी फिरि का अन्वय 'आई' के साथ होने पर लौट आना अर्थ होता है।

८—पुनरुक्ति प्रकाश (Tantology)

जहाँ पर भावो मे बल देने के लिए एक ही शब्द की दो बार आवृत्ति हो। जैसे —

(1) बिहग बिहग
फिर चहक उठे ये पुंज पुंज
चिर सुभग सुभग

(11) इससे उपजा यह नीरज सित,
कोमल कोमल लज्जित मीलित,
सौरभ सी लेकर मधुर पीर।

अर्थालकार

अर्थालङ्कार का आधार कल्पना है जो समता, विरोध और तटस्थता पर आधारित है। इनके वर्गीकरण का आधार मनावज्ञान्कि है जो हमारी बुद्धि साम्य, विरोध और सान्निध्य से प्रभावित होती है।

व्यास ने अग्निपुराण मे कहा है" जो अर्थो को अल कृत करते है वे अर्थालङ्कार है। इनके बिना तो शब्द सौन्दर्य भी मनोहर नही होता। [1]इस प्रकार जिन शब्दो के द्वारा जिस अलङ्कार की सृष्टि होती है। उन शब्दो के बदलने पर भी वह अलङ्कार बना रहे तब वहाँ अर्थालङ्कार होता है।

---

१ अलंकरणमर्थानामर्थलकार इष्यते
त बिना शब्दसौदर्यमपि नास्ति मनोहरम्। —अग्निपुराण

१—उपमा (Simile)

दोहा—रूप रग गुन काहु को, काहु के अनुसार।
तासो उपमा कहत हैं, जे सुबुद्धि आगार॥

जब दो भिन्न वस्तुओ मे एक ही साधारण धर्म का होना बताया जाय अर्थात् समानता बताई जाय तब उपमा अलकार होता है।

इसके चार आवश्यक अग है —

(क) **उपमेय**—जिसकी उपमा दी जाती है अथवा जिसको किसी के समान कहा जाता है।

(ख) **उपमान**—उपमेय की जिससे समता की जाती है।

(ग) **वाचक शब्द**—वह शब्द जिसके द्वारा समानता बताई जावे।

(घ) **साधारण धर्म**—वह गुण जो उपमेय और उपमान दोनो मे पाया जावे।

जैसे—"राधा रति के समान सुन्दर है।" इस वाक्य मे राधा – उपमेय, रति—उपमान, समान —वाचक शब्द और सुन्दर—साधारण धर्म है।

उपमा अलकार के मुख्य २ भेद है :—

(१) **पूर्णोपमा**—जहाँ उपमा के चारो अग—उपमेय, उपमान, वाचक शब्द और साधारण धर्म उपस्थित होते है वहाँ पूर्णोपमा अलङ्कार होता है।

उदाहरण :—

"नीलोत्पल के बीच सजाये मोती से आँसू के बूंद"
४ २ ३ १

उदाहरण :—

१—उपमेय, २—उपपान, ३—वाचक, ४—साधारण धर्म।

रामकथा सुरधेनु सम सेवत सब सुखदानि
१ २ ३ ४

(२) **लुप्तोपमा**—जहाँ उपमा के चारो अगो मे से किसी एक, दो अथवा तीन अगो का लोप हो वह लुप्तोपमा अलङ्कार होता है।

उदाहरण —

'नील सरोरुह श्याम तरुण अरुण वारिज नयन' इस पक्ति मे नयन और शरीर उपमेय, नील सरोरुह और तरुण वारिज उपमान तथा अरुण और श्याम समान धर्म है, किन्तु वाचक शब्द 'सम' से समान' नही है।

'कुन्द इन्दु सम देह उमारमन करुना अयन' यहाँ शिवजी की देह उपमेय है, कुन्द इन्दु उपमान, सम वाचक शब्द किन्तु गौर वर्ण आदि साधारण धर्म लुप्त है।

(३) मालोपमा—जहाँ एक उपमेय के अनेक उपमान कहे जाते है।

उदाहरण —

"उनमे क्या था श्वास मात्र ही था बस आता जाता।
ललित तंत्र सा चलित यंत्र सा, फलित मंत्र सा भाता॥
१ २ ३ गुप्त जी

उपर्युक्त पक्तियो मे साँस के आने जाने के ३ उपमान दिये गये है।

इन्द्र जिमि जंग पर बाडव सुअंभ पर
रावन सदभ पर रघुकुल राज हैं।
पौन वारिवाह पर शम्भु रतिनाह पर
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज हैं॥
दाव द्रुम दंड पर चीता मृग झुंड पर
भूषन वितुण्ड पर जैसे मृगराज है॥
तेज तिमिर अंश पर कान्ह जिमि कंस पर
त्यों म्लेच्छ बंस पर सेर शिवराज है॥

इस पद मे शिवाजी के बहुत से उपमान कहे गये है।

२ — रूपक

परिभाषा

उपमान अरु उपमेय ते वाचक धर्म मिटाय।
एकै कै आरोपिये सो रूपक कविराय॥

जहाँ उपमान का सारा रूप उपमेय मे चित्रित हो और केवल सादृश्य ही

का भाव न हो वरन् एकरूपता के साथ ही अभेद का भाव भी हो वहाँ रूपक होता है। जहाँ उपमेय को उपमान मे दिखाया जाय। जैसे कहा जाय—'सीता का मुख चन्द्र है।'

उदाहरण —

हरि मुख पंकज, भ्रू धनुष लोचन खंजन मित्त।
अधर बिम्ब कुंडल मकर बसे रहत मो चित्त॥

यहाँ मुख पंकज, भ्रू धनुष, कुण्डल मकर, अधर-बिम्ब को लेकर रूपक बाँधा गया है।

इस हृदय कमल का घिरना अलि-अलकों की उलझन मे।
आँसू मरन्द का गिरना मिलना निश्वास पवन मे॥

—प्रसाद

इस मे ४ रूपक है।

तरल मोती से नयन भरे।
मानस से ले उठे स्नेह घन, कसक विद्यु पलकों के हिमकण
सुधि स्वाति की छाँह पलक की सीपी मे उतरे। महादेवी वर्मा

इसमे आँसू उपमेय पर तरल मोती उपमान का आरोप है।
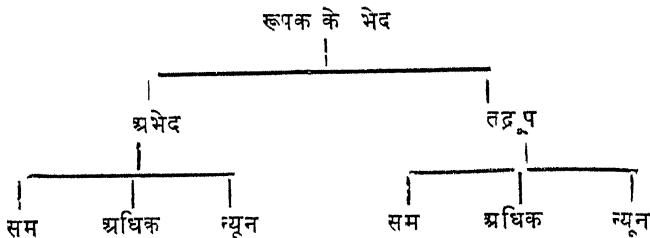
१—**अभेद रूपक**—जहाँ उपमान को ठीक उपमेय का ही रूप मानकर वर्णन किया जाता है।

(क) **सम अभेद रूपक**—उपमेय और उपमान मे परस्पर कोई अधिकता या न्यूनता नही बताई जाती बल्कि ज्यो का त्यो आरोप होता है—उदाहरण:—

बीती विभावरी जागरी।

अम्बर पनघट मे डुबो रही ताराघट ऊषा नागरी । —प्रसाद

इसमे अम्बर मे पनघट का, तारा मे घट का और ऊषा मे नागरी का सम—अभेद रूप से आरोप किया गया है ।

(ख) **अधिक अभेद रूपक**—उपमेय के उपमान की अपेक्षा कुछ अधिकता बताई जाती है।

उदाहरण :—

"जब विधु विमल तात जस तोरा, रघुवर किंकर कुमुद चकोरा।
उदित सदा अथरहि कबहूँ ना, घटहि न जग नभ दिन-दिन दूना ।।"

यहाँ यश नवीन चन्द्र का आरोप है । चन्द्रमा तो घटता-बढता है किन्तु यश-रूपी चन्द्रमा सदा उदित रहता है ।

(ग) **न्यून अभेद रूपक**—उपमेय मे उपमान की अपेक्षा कुछ न्यूनता या अभाव बताया जाय । उदाहरण :—

"बिना सरोवर के खिला देखो वदन सरोज ।
व्यहुलता मृदु मजु है सुमन न पाया खोज ।

इसमे सुमन और सरोवर की न्यूनता वर्णित है ।

[२] **तद्रूप रूपक**—जहाँ उपमेय को उपमान का दूसरा रूप कहा जाता है अर्थात उपमेय को कुछ भेद रखकर उपमान बनाया जाता है । जैसे—"मुख दूसरा चन्द्रमा है ।"

(क) **सम तद्रूप रूपक**— जब उपमेय और उपमान मे समता हो, जैसे:—

रच्यो विधाता दुहुन लै, सिगरी सोभा साज ।
तू सुन्दर रति दूसरी, यह दूजो सुरराज ।।

(ख **अधिक तद्रूप रूपक**—जब उपमेय मे उपमान की अपेक्षा कुछ अधिक गुण बढा कर कहे जावे ।

उदाहरणः—

" मुख ससि वा ससि ते अधिक, उदित ज्योति दिनरात ।"

(ग) **न्यून तद्रूप रूपक**—जब उपमेय मे उपमान से कुछ गुण कम होने पर भी दोनो को एकरूप कहा जाय ।

उदाहरणः—

> दुइ भुज के हरि रघुवर, सुन्दर भेस।
> एक जीभ के लछिमन, दूसर सेस॥

यहाँ लक्ष्मण को दूसरा शेष तो बताया है, किन्तु एक जीभ होने के कारण लक्ष्मण उपमान शेषनाग से न्यून हो गये।

वर्णन प्रणाली के अनुसार सम अभेद रूपक के ३ भेद-और भी कहे गये है :
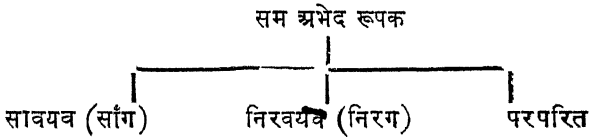
(अ) **सावयव या साँग रूपक** – जहाँ उपमान के समस्त अगो का आरोप उपमेय से होता है अर्थात जब उपमेय मे उपमान का आरोप हो और उपमेय के अशो मे उपमान के अगो का आरोप भी साथ ही साथ हो, जैसेः—

> (१) जीवन की चंचल सरिता मे फेकी मैंने मन की जाली।
> फँस गयी मनोहर भावो की मछलियाँ सुघर भोली भाली॥
>
> —पन्त

इसमे मछलियाँ फँसाने के सभी साधन है।

> (२) रनित भृंग घण्टावली, झरति दान मधु नीर।
> मन्द-मन्द आवत चल्यो कुंजर-कुंज समीर॥"

यहाँ कुज की समीर मे हाथी का आरोप है, समीर के अग-भृग और मकरकन्द से हाथी के घण्ट और मद जल का आरोप है।

> (३) मै बनी मधुमास आली।
> रजत सपनो मे उदित अपलक विरल तारावली।
> जाग सुख पिकने अचानक मदिर पंचम तान ली।
> वह चली निश्वास की मृदु बात मलय निकुंज पाली।

(ब) **निरवयव या निरंग रूपक**—जहाँ उपमान के प्रधान गुणें का

आरोप उपमेय पर किया जाता है। अर्थात जब केवल उपमेय मे उपमान का आरोप हो लेकिन उपमेय के अगो मे उपमान के अगो का आरोप न हो।

उदाहरण —

(१) अति आनन्द उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा।

यहाँ चरण पर सरोज का आरोप है किन्तु सरोज के अगो का आरोप किसी पर नही है।

(२) महामोह मृग जल-सरिता महँ बोरयो। हौ बारहि बार।

यहाँ मोह पर मृग जल-सरिता का आरोप उसके किसी अग का आरोप नही।

(३) हरिमुख पंकज, भ्रुव धनुष, खंजन लोचन मित्त।
विम्ब अधर, कुण्डल मकर, बसे रहत मो चित्त॥

(ख) परंपरित रूपक—जहाँ प्रधान रूपक एक दूसरे रूपक पर आश्रित रहता है और वह बिना दूसरे रूपक के स्पष्ट नही होता।

(१) रामकथा सुन्दर करतारी। ससय विहग उड़ावन हारी॥

यहाँ पर दो रूपक है, (१) रामकथा रूपी करतारी और (२) ससय रूपी विहग। रामकथा को करतारी बनाने का कारण ससय को विहग बनाना है।

(२) सकल कामना हीन जे, राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूप ह्रद, तिनहुँ किये मन मीन॥

यहाँ निष्काम भक्तो के मन मीन के आरोप का कारण राम नाम मे सुधा-सरोवर का आरोप है।

(३) नागर नगर अपार, महामोह तम मित्र से।
तृष्णा लता कुठार, लोभ समुद्र अगस्त्य से॥

३—प्रतीप

प्रतीप का अर्थ है 'उल्टा' या विपरीत। जहाँ उपमान को उपमेय करके अथवा प्रसिद्ध उपमेय को उपमान करके समानता दिखलायी जाती है और इस प्रकार उसे उत्कृष्ट बनाया जावे। यह ५ प्रकार से चित्रित होता है :—

(१) प्रसिद्ध उपमान को उपमेय कल्पना करना।

उदाहरण :—

"सन्ध्या फूली परम प्रिय की कान्ति-सी है दिखाती।"

सन्ध्या उपमान को उपमेय बनाकर कान्ति उपमेय से तुलना की है।

(२) जब उपमान को उपमेय बनाकर वर्णनीय उपमेय का उपमान द्वारा अनादर कराया जाय, जैसे —

"करती तू निज रूप का गर्व किन्तु अविवेक,
रमा, उमा, शचि शारदा तेरे सदृश अनेक।"

यहाँ नायिका-सौन्दर्य वर्णनीय है बताकर रमा, उमा, आदि प्रसिद्ध उपमानो का उपमेय बताकर नायिका का गर्व दूर किया है।

(३) जब उपमान को उपमेय मानकर उपमान का निरादर किया जाता है, जैसे —

"तव समान मुख मंजु शशि काहे करत गुमान।"

(४) जब उपमान को उपमेय की उपमा के अयोग्य कथन किया जाता है, जैसे :—

"तव मुख के सम ह्वै सकत कहा विचारो चन्द।"

(५) उपमान का कार्य उपमेय ही कर सकता है फिर उपमान की क्या आवश्यकता ऐसा कह कर जब उपमान को व्यर्थ बताया जाय, जैसे :—

जहँ राधा आनन उदित, निसि बासर सानन्द।
तहाँ कहा अरविन्द है, कहा बापुरो चन्द॥

४—व्यतिरेक

उपमा ते उपमेय में अधिक कछू गुन होय।
व्यतिरेकालंकार तेहि, कहै सयाने लोय॥

जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय का उत्कर्ष वर्णन किया जावे।

उदाहरण :—

(१) जिनके जस प्रताप के आगे,
ससि मलीन रवि सीतल लागे।

(२) स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहाँ,
किन्तु सुर सरिता कहाँ सरयू कहाँ?

यह मरों को मात्र पार उतारती,
यह यहीं से जीवितों को तारती ॥
—गुप्त जी :

सुरसरिता उपमान की अपेक्षा सरयू उपमेय का उत्कर्ष वर्णन है ।

(३) सन्त हृदय नवनीत समाना । कहा कविन पै कहे न जाना ।
निज दुख लागि द्रवै नवनीता । पर दुख द्रवै सो सन्त पुनीता ॥

इस चौपाई मे उपमान 'नवनीत' की अपेक्षा उपमेय 'सन्त' मे विशेषता दिखलाई गयी है ।

५—उत्प्रेक्षा

उत्प्रेक्षा (उ द्+प्र+ईक्षन) शब्द का अर्थ है बलपूर्वक प्रधानता से देखना । उपमेय और उपमान मे भेद सर्वथा ज्ञात तो रहता है फिर भी उपमेय मे उपमान का आरोप किया जाता है । इसके कुछ विशिष्ट वाचक शब्द है जो कविता मे प्रयुक्त होते है, जैसे—मनु, मानहु, मानो, जनु, इव, प्रायः शके, मनहु, मान्हो, निश्चै, आदि । जैसे —

"पुलिन पर सैन्य के तम्बू तने है,
घने मधुकोप ही मानो बने हैं ।"

इसके ३ भेद है ।
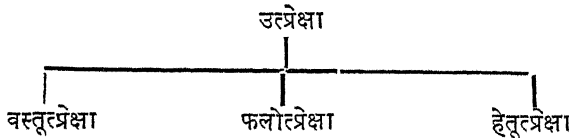
(अ) वस्तूत्प्रेक्षा—जहाँ एक वस्तु के रूप की दूसरे वस्तु के रूप मे सम्भावना की जाय अर्थात उपमेय मे उपमान का आरोप सादृश्य भाव के आधार पर किया जाय ।

उदाहरण :—

(१) कहते हुये यों पार्थ के दो बूँद आँसू गिर पडे ।
मानो हुये दो सीपियो से व्यक्त दो मोती बडे ॥

(२) अति कटु बचन कहत कैकेयी, मानहुँ लोन जरे पर देई ।

(ब) फलोत्प्रेक्षा--जहाँ जो फल नहीं है, उसे भी फल मान कर सभावना की जाय, जैसे :—

धूरि धरत निज शीश पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, तेहि ढूँढ़त गजराज ॥

(स) हेतूत्प्रेक्षा —जो वास्तव मे कारण न हो उसे कारण मानकर उत्प्रेक्षा की जाय, जैसे —

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सो जल परसनहित मनहु सुहाये ॥

पेड का झुकना या सीधा रहना स्वाभाविक है, किन्तु यहाँ पर यमुना के जल का स्पर्श करने के लिये झुकना दिखाना वास्तविक कारण न होते हुये भी उत्प्रेक्षा की गयी है।

६—उल्लेख

जहाँ एक वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन किया जावे। यह दो प्रकार से वर्णित होता है :—

(१) एक व्यक्ति या वस्तु को अनेक व्यक्ति अनेक प्रकार से देखें, सुनें और वर्णन करें।

(२) एक व्यक्ति या वस्तु को एक ही व्यक्ति अनेक प्रकार से वर्णन करे।

उदाहरण :—

(१) जिनकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन्ह तैसी ॥
देखहि भूप महारनधीरा, मनहु वीर रस धरे सरीरा ॥
डरै कुटिल नृप प्रभुहि निहारी, मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छल छोनिप बेखा, तिन प्रभु प्रगट काल सम देखा ॥

यहाँ राम को अनेक व्यक्तियो ने अनेको रूप मे देखे है।

(२) साधुन को सुख दानि है, दुर्जन को दुख दानि।
बैरिन विक्रम हानिप्रद, राम तिहारे पानि ॥

राम के हाथ के अनेक रूप व्यक्ति देखता है।

७—सन्देह

दोहा—जहँ उपमा उपमेय को आपुस मे सन्देह।
ताही सो ससय उकति सुमति जानि सब लेहु ॥

जहाँ किसी वस्तु को देखकर सशय बना ही रहे, निश्चय न हो वहाँ सन्देह अलकार होता है। धौं, किधौं, को, कि, य, अथवा, इत्यादि इस अलकार के वाचक शब्द हैं।

उदाहरणः—

दीपावली के वर्णन मे 'तारे' आदि का सन्देह।

तारे आसमान के हैं आये मेहमान बन,
या कि कमला ही आज आके मुसकाई है।
चमक रही है चपला ही एकसाथ या कि,
केशो मे निशा के मुक्तावली सजाई है॥

(२) घनच्युत चपलम कै लता, सशय भयो निहारि।
दीरघ स्वासनि लखि कपी, किय सीत निरधारि॥

सीता जी को देखकर हनुमान को बिजली और लता का सन्देह हुआ किन्तु दीर्घ स्वास के कारण उनका सन्देह मिट गया।

८—भ्रान्तिमान

जहाँ सादृष्यता या समानता होने के कारण उपमेय मे उपमान का भ्रम हो जाय[1] वहाँ भ्रान्तिमान अलकार होता है।

उदाहरण —

"नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाडिम को समझकर भ्रान्ति से॥
देख उसको ही हुआ शुक मौन है।
सोचता है अन्य शुक यह कौन है॥"

(२) "री सखि मोहि बचाय, या मतवारे भ्रमर सो।
डसो चहत मुख आय, भरम भरो बारिज गनै॥

मुख को वारिज (कमल) समझकर भँवरा रसपान करना चाहता है।

९—स्मरण

दोहा—कछु लखि, कछु सुनि, सोचि कुछ, सुधि आवै कछु खास।
सुमिरन ताकों भाखिये, बुधिवर सहित हुलास॥

पूर्वानुभूत वस्तु के सदृश्य किसी वस्तु के देखने, सुनने पर उसकी स्मृति करने को स्मरण अलकार कहते है।

उदाहरण —

(१) खंजन जुग लखि रामजू, कहत कठिन यह हीय।
हाय कितै मेरी गयी। खंजन नयनी सीय॥

(२) छू देती है मृदुपवन ज्यो पास आ गात मेरा।
तो हो जाती है परम सुधि श्याम प्यारे करो की॥

अलकार

१०—परिणाम

जब उपमान स्वय किसी कार्य करने मे असमर्थ होने के कारण उपमेय से अभिन्नता स्थापित कर अर्थात सहायता मे कार्य को करने मे समर्थ होता है तब वहाँ परिणाम अलकार होता है। जैसेः—

(१) मेरा शिशु ससार वह दूध पिये परिपुष्ट हो।
पानी के ही पात्र तुम प्रभो रुष्ट वा तुष्ट हो।

यहाँ ससार उपमान जब तक उपमेय (शिशु) से एकरूप अथवा अभिन्न नही होता तब तक उपमान का दूध पीना कार्यपूर्ण नही होता।

(२) इस अपार संसार विकट मे विषम-विषम वन गहन महा।
किया बहुत ही भ्रमण किन्तु हा, मिला नही विश्राम यहाँ॥
होकर श्रान्त भाग्यवश अब मै हस्तिमाल के शरण हुआ।
हरण करेगा ताप वही रहता, यमुना तट स्फुरण हुआ॥

तमाल वृक्ष (उपमान) के द्वारा ससार ताप हरण का कार्य नही हो सकता अतएव तमाल हरि (उपमेय) की सहायता से ससार अपहरण मे समर्थ हो सकता है। इसलिये परिणाम अलकार हुआ।

११—दृष्टान्त

जहाँ पहले एक बात कह कर उसको स्पष्ट करने के लिये उसमे मिलती जुलती दूसरी बात कही जाय, जैसे —

(१) जपत एक हरिनाम के पातक कोटि विलाय।
लघु चिनकारी एक ते घास ढेर जरि जाय॥

(२) रहिमन असुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेइ।
जाहि निकारी गेह ते, कस न भेद कह देइ॥

१२—काव्यलिंग

काव्यलिंग मे दो शब्द है, काव्य=काव्य का अर्थ+लिंग=पहिचान करने वाला चिन्हा अतएव अर्थ हुआ काव्य मे कही हुयी बात की ठीक पहिचान कराने वाला चिन्ह। जहाँ किसी वाक्य या पद के अर्थ(भाव) मे ही किसी कार्य का कारण कहा जावे वहाँ काव्यलिंग अलकार होता है। भिखारी-दास ने इसके लक्षण मे कहा है—

जहॅ सुभाव के हेतु को, कै प्रमान जो कोइ।
करै समर्थन जुक्ति बल, काव्यलिग है सोइ॥

उदाहरण —

कनक कनक ते सौगुनी, मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात है, यह पाये बौराय॥

धतूरे की अपेक्षा सोना सौ गुना अधिक मादक होता है, उत्तरार्द्ध के वाक्यार्थ मे इस कथन को सिद्ध किया है।

(२) करौ कुबत जग कुटिलता, तजौ न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरलहिय, बसत त्रिभगी लाल॥

अपनी कुटिलता न छोडने का कारण कवि पद की दूसरी पक्ति मे कृष्ण को त्रिभगीलाल कहकर समर्थन करता है कि, हे कृष्ण! चूँकि तुम त्रिभगी हो इसीलिये मैं अपने हृदय को कुटिल (टेढा) बनाये हूँ ताकि तुम्हे निवास करने में कष्ट न हो।

(३) स्याम गौर किमि कहौं बखानी।
गिरा नयन अनयन बिनु बानी॥

यहाँ वर्णन न कर सकने का कारण उत्तरार्द्ध मे अच्छा कहा गया है।

१३---प्रतिवस्तूपमा

दोहा—जुग वाक्यन को होते जहँ, एक धर्म बखान।
भूषन प्रतिवस्तूपमा ताहि कहै मतिमान॥

जहाँ उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य समान हो तथा दोनो का एक ही धर्म दो समानार्थक शब्दो द्वारा व्यक्त किया जावे। इसमे ३ बाते आवश्यक होती हैं:—

(१) उपमेय और उपमान स्वरूप दो वाक्य।

(२) दोनो वाक्यो मे एक ही धर्म का कथन।

(३) प्रथम वाक्य मे जिन शब्दो द्वारा धर्म का कथन किया जाता है। दूसरे वाक्य मे उसमे भिन्न शब्द या शब्दो द्वारा धर्म का कथन किया जाता है।

उदाहरण:—

(१) चटक न छाँडत घटत हू सज्जन नेह गम्भीर।
फीको परै न बरु फटै रग्यो चोल रग चीर॥

इस दोहे मे पूर्वार्द्ध उपमेय वाक्य, उत्तरार्द्ध मे उपमान वाक्य है 'कम न होना' दोनो का धर्म है जो 'चटक न छाँडत' और 'फीको परै न' दो एकार्थ-वाची शब्दो द्वारा प्रकट किया गया है।

(२) तिनही सोहात न अवध बधावा।
चोरहि चाँदनि राति न भावा॥

पूर्वार्द्ध वाक्य उपमेय, उत्तरार्द्ध उपमान है, दोनो का एक ही धर्म है जो 'सोहात न' और 'न भावा' शब्दो द्वारा व्यक्त है।

१४—अर्थान्तरन्यास

जहाँ किसी सामान्य बात का विशेष बात से समर्थन किया जाये अथवा किसी विशेष बात का समर्थन कोई सामान्य बात के द्वारा किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलकार होता है।

उदाहरण :—

(१) सबै सहायक सबल को, कोइ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहि देत बुझाय ॥

प्रथम पक्ति मे सामान्य कथन का समर्थन द्वितीय पक्ति मे विशेष कथन द्वारा किया गया है।

(२) कौन बडाई उदधि मिलि गग नाम को धीम।
केहि की महिमा नहि घटी पर घट गये रहीम ॥

(३) नीचे को न कभी स्वमस्तक पर चढ़ाना चाहिये।
स्नेह करके मन नही उसका बढाना चाहिये ॥
तेल इत्रो से उन्हे यद्यपि बढाते हैं सभी।
केश तो भी वक्रता को छोडते हैं क्या कभी ॥

सामान्य द्वारा सामान्य का समर्थन है।

१५—तुल्ययोगिता

दोहा—क्रिया और गुण करि जहाँ धर्म एकता होय।
चतुर चतुर बिधि कहत है तुल्ययोगिता सोय ॥

जहाँ अनेक उपमेयो एव उपमानो के एक ही धर्म, गुण अथवा क्रियादि का वर्णन किया जावे। इसके भी तीन भेद होते हे —

(अ) प्रथम तुल्ययोगिता—जहाँ अनेक उपमेयो का एक धर्म कथन किया जावे, जैसे —

"कहै यहै श्रुति, सुमुति औ यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसक ही पातक राजा रोग ॥

(ब) द्वितीय तुल्ययोगिता—जहाँ हित और अहित मे समान वृत्ति दिखलाई जावे, जैसे :—

"सज्जन जन को रहत सम, उदय अस्त मे चित्त।
अरुण यथा रवि उदय मे, तथा अस्त मे नित्त ॥"

(स) तृतीय तुल्योगिता—उपमेय की उत्कृष्ट गुणवालो के साथ गणना की जाय, जैसे :—

तुम विधि, बुध, विधु, बिबुधपति, विधुधर बुद्धि निधान ।
तुमहि भूप हौ कल्पतरु, गुननिधि चतुर सुजान ॥

१६—परिकर

जब प्रस्तुत का वर्णन करने के लिये उसके साथ ऐसे विशेषणो का प्रयोग किया जाय, जो साभिप्राय हो अथवा कोई ऐसा विशेषण लाया जाय जिसका सम्बन्ध उस पद की क्रिया से हो अर्थात् वक्ता का अभिप्राय विशेषण से अभिव्यक्त हो वहाँ परिकर अलकार होता है ।

उदाहरण —

(१) किन्तु विरह वृश्चिक ने आकर, अब यह मुझको घेरा ।
गुणी गारुड़िक दूर खड़ा तू, कौतुक देखत मेरा ॥

अर्थात् गारुडिक (तत्र मत्र विशेषज्ञ) विशेषण से यह व्यक्त होता है, कि विरह वृश्चिक (बिच्छू) के दर्शन से मुक्त करने मे तू ही समर्थ है ।

(२) जानो न नेकु विथा पर की,
बलिहारी तऊ पै सुजान कहावत ।

यहाँ सुजान का सम्बन्ध 'कहावत' क्रिया से है ।

१७—असंगति

दोहा—कारण कारज को जहाँ लखो विरोधाभास ।
ताहि असंगति जानिये, कवि जन सहित हुलास ॥

असगति अलकार मे कारण और कार्य की स्वभाविक सगति का त्याग वर्णन किया जाता है । इसके ३ भेद है —

(अ) प्रथम असगति – कार्य और कारण पृथक्-पृथक् स्थान पर वर्णित हो, जैसे :—

मेरे जीवन की उलझन, बिखरी थी उनकी अलके ।
पीली मधु मदिरा किसने, की बन्द हमारी पलके ॥

(ब) द्वितीय असगति – जो कार्य जिस उचित स्थान पर करने के योग्य हो उसे वहाँ न करके दूसरे स्थान पर किया जाय, जैसे :—

(१) पहिरि कठ बिच किंकिनी, कस्यो कमर बिच हार ।

करधनी कमर के बजाय कण्ठ मे पहन ली और हार गले के स्थान पर कमर मे पहन लिया, इस प्रकार करणीय कार्य उचित स्थान पर नही किया गया।

(२) "पायन की सुधि भूल गयी,
अकुलाय महावर आँखन दीन्ही।"

(स) तृतीय सगति—मतिराम कहते हैं "करन लगै जो काज कछु, ताते करै विरुद्ध" अर्थात् जिस कार्य को करने की प्रवृत्ति हो उसके विरुद्ध कार्य किया जावे, जैसे —

(१) "मोह मिटाविन हेतु प्रभु, लीन्हो तुम अवतार।
उलटो मोहन रूप धरि। मोही सब ब्रज नारि॥"

विश्व का मोह मिटाने के लिये अवतार लेने वाले कृष्ण ब्रजनारियो को मोहने लगे।

(२) "आये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास।"

१८—स्वाभावोक्ति

जाको जैसो रूप गुन वर्णत ताही साज।
सुभावोक्ति भूषन तहाँ कहैं सबै कविराज॥

जहाँ किसी वस्तु का यथातत्थ वर्णन कर दिया जावे, जैसे बालक आदि को स्वाभाविक चेष्टा आदि का चमत्कारिक वर्णन। जैसे —

(१) धूसरि धूरि भरे तनु आये, भूपति बिहँसि गोद बैठाये॥

(२) रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाहि पर वचन न जाई॥
कुल का स्वाभाविक वर्णन है।

(३) चढ़कर गिरकर फिर उठकर कहता तू अमर कहानी।
गिरि के अचल मे करता कूजित कल्याणी वाणी॥
झरने का स्वाभाविक वर्णन है।

१९—प्रत्यनीक

शत्रु को जीतने मे असमर्थ होने के कारण उसके पक्ष वालो से वैर निकालने को प्रत्यनीक अलकार कहते है।

उदाहरण—

(१) तेज मद मन्द ने कियो बस न चल्यो तेहि सग।
दुर्हुन नाम एकै समुझि जारत दिया पतंग।

अर्थात् सूर्य के प्रकाश के सामने दीपक का प्रकाश मन्द पड जाता है और उसका कोई वश नही चलता तभी वह पतग (सूर्य) और पतिगा को एक नाम समझकर जलाता है।

(२) सस्मित बोला असुर पुच्छ प्रिय है वानर को।
उसे जला दो अभी दिखावे जाकर नर को॥
तब लज्जित हो तपसी स्वयं या डर कर भग जायगा।
या वह मेरे कर निधन हो यम के कर लग जायगा॥

यहाँ राम से बैर भावना की पूर्ति मे असमर्थ रावण निजी दूत हनूमान से वैर निकालता है।

२०——समासोक्ति (Model Metaphor)

जहँ प्रस्तुत मे होत है अप्रस्तुत को भान।
समासोक्ति तेहि कहत है कविजन परम सुजान॥

जब किसी कथन मे कवि के इच्छित अर्थ के अतिरिक्त कोई दूसरा अर्थ भी आसमान होता है तब उस कथन मे समासोक्ति अलकार माना जाता है। इसमे श्लेष शब्दो का भी अनायास प्रयोग हो जाता है। जैसे :—

(१) लता नवल तनु अग जात जरी जीवन बिना।
कहा सिख्यो यह ढंग, तरुन अरुन निरदै निरखु॥

इस सोरठे मे प्रचण्ड सूर्य के ताप के कारण कोमल लता के सूख जाने का वर्णन है किन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर विरहिणी नायिका की दशा का भी आभास मिलता है।

(२) तुही साँच द्विजराज है तेरी कला प्रमान।
तोपै सिव किरपा करी, जानत सकल जहान॥

कवि का इच्छित तात्पय चन्द्रमा की प्रशसा है किन्तु 'द्विजराज' और 'शिव' शब्द श्लिष्ट होने के कारण भूषण कवि और शिवाजी के व्यवहार का

२१—निदर्शना

दोहा—सरिस वाक्य जुग के अरथ करिये एक अरोप ।
भूषण ताहि निदर्शना, कहत बुद्धि दै ओप ॥

विभिन्नता रहते हुए भी जहाँ दो वाक्यो के अर्थ मे समता भाव सूचक ऐसा आरोप किया जावे कि दोनो एकसे जान पडे । वहाँ निदर्शना अलकार होता है । प्राचीन आचार्यो ने दो, और नवीन आचार्या मे किसी ने ३ और किसी ने ६ भेद माने है । किन्तु प्रमुख ३ भेद है ।

(अ) प्रथम निदर्शना

जहाँ वाक्य या वस्तु मे असम्भव सम्बन्ध के लिए उपमा की कल्पना की जाय । जैसे —

(१) व्यालाधिप गहिबो चहै दावानल कर लीन्ह ।
हालाहल पीयों चहै जे चहै ग्वल बस कीन्ह ॥

अर्थात् दुर्जनो को वश मे करने की इच्छा ३ असम्भव उपमाओ से तुलना की जाती है – सर्पराज को पकडने, प्रचण्ड अग्नि को हथेली पर रखने और जहर को पीने की इच्छा के समान ।

(२) सन्धि का प्रश्न तो उठता ही नहीं—सोच ले,
देशद्रोहियो से सन्धि ! यह आत्मघात है ।
चुप बैठ जाना द्रोहियो से सन्धि करके,
आँगन मे सोना है लगाके आग घर मे । —वियोगीहरि :

उपर्युक्त पद मे ३री और ४थी पक्ति उपमेय और उपमान वाक्य है । दोनो मे असम्भव सम्भव दर्शाया गया है । द्रोहियो से सन्धि करके चुप हो जाना और घर मे आग लगाकर सोना ।

(ब) द्वितीय निदर्शना

अपने स्वरूप और उसके कारण का सम्बन्ध अपनी सद्-असद् क्रिया द्वारा सद्-असद् का बोध कराना ।

उदाहरण —

पास पास ये उभय वृक्ष देखो अहा।
फूल रहा है एक दूसरा झड रहा।
है ऐसी ही दशा प्रिये नर लोक की।
कहीं हर्ष की बात कहीं पर शोक की। —गुप्त

यहाँ पर वृक्ष और फूलने और झडने की क्रिया से ससार के सुख-दुख का निर्देश किया गया है।

(स) तृतीय निदर्शना

जहाँ उपमेय का गुण उपमान मे अथवा उपमान का गुण उपमेय मे आरोपित हो वहाँ तृतीय निदर्शना होता है। जैसे —

(१) अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा।
सिय मुखससि भए नैन चकोरा॥

(२) तुव वचनन की मधुरता रही सुधा मँह छाय।
चारु चमक चल नैन की, मीनन लई छिनाय॥

उत्तर

चमत्कारपूर्ण उत्तर होने से उत्तर अलकार होता है।

यह दो प्रकार का होता है

१—**प्रथम उत्तर**—जहाँ उत्तर के सुनने मात्र से ही प्रश्न का अनुमान कर लिया जाय अथवा अनुमानित प्रश्न का सदिग्ध या सम्भाव्य उत्तर दिया जाय। जैसे

हे अनन्त रमणीय! कौन तुम? यह मै कैसे कह सकता।
कैसे हो? क्या हो? इसका तो मम विचार न सह सकता।
हे विराट हे विश्वदेव तुम कुछ हो ऐसा होता भास॥

२—**द्वितीय उत्तर**—वाक्य मे ही प्रश्न का उत्तर अथवा अनेक प्रश्नो का एक ही उत्तर दिया जाना द्वितीय उत्तर अलकार कहते है। इसके अन्य नाम प्रश्नोत्तर और चित्रोत्तर अलकार भी है। जैसे :—

(१) सरद चाँद की चाँदनी को कहिये प्रतिकूल?
सरद चाँद की चाँदनी कोक हिये प्रतिकूल।

यहाँ पूँछा गया, शरद् की चाँदनी किसे प्रतिकूल है तो दूसरी पक्ति मे उत्तर है 'कोक के हिय' को ।

(२) पान सडा घोड़ा अडा क्यों कहिये ? फेरे बिना ।
गवा दुखी ब्राह्मण दुखी क्यों कहिये ? लोटे बिना ॥

दोनो पक्तियो मे दोनो का उत्तर एक ही है । इसे प्रश्नोत्तरालकार अथवा अन्तर्लोपिका भी कहते है ।

२२—विरोधाभास

आचार्य केशव ने इसकी परिभाषा यो दी है ।

"बरनत लगै विरोध सो अर्थ सबै अविरोध ।
प्रगट विरोधाभास यँह, समुझत सबै सुबोध ॥"

जहाँ वास्तविकता मे विरोध न हो फिर भी वर्णन मे विरोध का आभास मिले वहाँ विरोधाभास अलकार होता है । विरोध जाति, गुण क्रिया और द्रव्य के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है ।

उदाहरण —

(१) "या अनुरागी चित्त की गति समझै नहि कोइ ।
ज्यों ज्यो बूडे श्याम रंग त्यों त्यों उज्जवल होइ ॥"

यहाँ श्याम रग से उज्जवल रग की उत्पत्ति मे विरोध का आभास मिलता है लेकिन 'श्याम रग' का अर्थ श्रीकृष्ण, 'उज्जवल' का अर्थ पवित्र, स्वच्छ ले लेने पर विरोध का परिहार हो जाता है । यहाँ गुण का गुण, के साथ विरोध है ।

(२) अपने दिन रात हुये उनके क्षण ही भर मे छवि देख यहाँ ।
सुलगी अनुराग की आग वहाँ जल से भरपूर तड़ाग जहाँ ॥

आग और पानी विरोधी वस्तुओ के एकत्रीकरण की स्थिति द्वारा विरोध का आभास मिलता है । यहाँ द्रव्य का द्रव्य से विरोध है ।

(३) "मृदुल मधुर हू खल वचन दाहक होतु बिसेस ॥
जदपि कठिन तउ सुख करत सज्जन बचन हमेस ॥"

मृदुल गुण का दाह क्रिया के साथ और कठिन गुण का सुखकरण क्रिया के साथ विरोधाभास है ।

२३—सूक्ष्म

जहाँ किसी सकेत, चेष्टा, आकार आदि किसी युक्ति से किसी रहस्य को सूचित किया जाय अर्थात् किसी गुप्त मनोभाव को सकेत, अग चेष्टा आदि के द्वारा व्यक्त किया जाय तब वहाँ सूक्ष्म अलकार होता है।

उदाहरण :—

(१) सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
विहँसे करुणा ऐन चितै जानकी लखन तन॥

(२) लख्यो भीम हरि ओर जबी थरन जरासुत साथ।
चीरि दिखाओ कृष्ण ने ले तिनका निज हाथ॥

(३) विनती रति विपरीत की, करी परसि पिय पाय।
हँसि अनबोले ही दियो ऊत्तर दियो बुलाय॥

निदर्शना का उदाहरण

(१) युद्ध जीतना जो चाह वे है तुमसे बैर बढ़ाकर।
जीवित रहने की इच्छा वे करते हैं विष खाकर॥

(२) जे अस भगतिजानि परिहरही,
केवल ज्ञान हेतु सुभ करहीं।
ते जर काम धेनु गृह त्यागी,
खोजत आक फिरहि पत लागी॥

२४—उदात्त

जहाँ किसी उपलक्षण के द्वारा किसी के धन या महत्ता का वर्णन किया जाय वहाँ उदात्त अलकार होता है। जैसे —

निम्न पक्तियो मे उज्जैन की श्री समृद्धि का चित्रण है—

(१) मुक्तमाला अगणित जहाँ हैं घनी शख सीपी,
दूर्वा जैसी विलसित मणी रत्न वैदूर्य की भी।
मूँगे के हैं कन धन लगे देख बाजार शोभा,
जी मे आता अब उदधि मे वारि ही शेष होगा॥

(२) महामहिमतम विष्णु लोक को तज, जो था शोभा भडार।
वन विहार हित और देखने दिव्य अयोध्या का शृंगार॥
रवि कुल कमल दिवाकर होकर किया विष्णु ने यही निवास।
रावण वध मिसमात्र क्योकि था उनका भ्रभंग विलास॥

भारत देश के इस वर्णन मे भगवान विष्णु के अवतार श्रीराम का अग और महत्ता का वर्णन है।

आचार्य दण्डी ने अपने ग्रन्थ काव्यादर्श मे इस अलकार की व्याख्या इस प्रकार की है।

आशयस्यविभूतेर्वा यन्महत्वमनुत्तमम्।
उदात्त नाम त प्रोहुरलंकार मनीषिणा॥

अर्थात् अभिप्राय अथवा ऐश्वर्य का जो अलौकिक महत्व पूर्णवर्णन किया जाता है, उसको विद्वान लोग उदात्त नामक अलकार कहते है।

२५—विभावना

"विभावयन्ति कारणान्तर मस्थामिति विभावना"

अर्थात् विभावना अलकार मे कारणान्तर की कल्पना की जाती है। काव्य प्रकाश मे विभावना की परिभाषा देते हुये कहा है.

"क्रियाया प्रतिषेधेऽपि फल व्यक्तिर्विभावना"

अर्थात् जहाँ किसी क्रिया के निषेध मे भी फल को व्यक्त किया जावे वहाँ विभावना मानी जाती है। इस प्रकार सरल शब्दो मे विभावना अलकार उसे कहते हैं, जहाँ कारण के बिना ही कार्य का प्रतिपादन होना दिखलाया जावे।

"कारण बिनही होत है, कारज कौनो सिद्ध।"

साहित्य दर्पण मे दो भेद १—उक्त निमित्ता और २—अनुक्तनिमित्ता किये गये हैं, काव्य प्रकाश मे कोई भी भेद उल्लिखित नही हैं। अप्पय दीक्षित ने कुवलयानन्द मे ६ भेद दिये है जो आज भी सर्वमान्य है।

(क) प्रथम विभावना—जब कारण न होने पर भी कार्य हो जावें। जैसे :—

(१) बिनु पद चलै सुनै बिन काना।
कर बिनु कर्म करै विधि नाना।"

(२) बिन करताल पखावज बाजै अणहद की झंकार रे।
बिन सुन राग छतीसो गावै रोम-रोम रंग सार रे ॥

(ख) द्वितीय विभावना—कारण के अपूर्ण होने पर भी कार्य की पूर्ति हो जावे। जैसे —

"तासो की सिवा जी जेहि दो सौ आदमी सो।
जीत्यों जंग सरदार सौ हजार असवार को ॥"

अर्थात् शिवाजी ने दो सौ आदमियो की सहायता से सौ हजार सवारो के नायक सरदार को जीत लिया। इसमे दो सौ आदमी कारण हैं, विजय की क्रिया के जो अपर्याप्त है।

(ग) तृतीय विभावना—जहाँ प्रतिबन्ध या रुकावट के होते हुये भी कार्य हो जाय। जैसे —

(१) ज्यो-ज्यों लज्जावश वह थी रोकती वारिधारा।
त्यों-त्यों आँसू अधिकतर थे लोचनों मध्य आते ॥"

इसमे लाजवश रोकने पर भी आंसू उमड आना दिखाया है।

(२) जदपि बसे हरि जाय उत, आवन पावत नाहिं।
मिलत मोहि नित तदपि सखि, प्रतिदिन सपने माँहि ॥

(घ) चतुर्थ विभावना—जहाँ किसी वस्तु की सिद्धि उसका कारण न होने पर भी होना वर्णित हो। जैसे —

(१) निकसी नीरज नाल ते चंपक कलिका पाच।"

(२) जो हिन्दूपति तेग तुव पानिप भरी सदाहि।
अचरज याकी आँच सो अरिगन जरि जरि जाहि ॥

यहाँ शान चढ़ी तलवार की आंच से शत्रुओ का जलना अकारण से कार्य कहा गया है।

(च) पचम विभावना—जहाँ विरुद्ध कारण से कार्य का होना वर्णित हो। जैसे —

(१) "चुभते ही तेरा अरुण बान।
बहते कन-कन से फूट-फूट मधु के निर्झर से सजल गान।"

बाण के लगने से गान का फूटना विरुद्ध कारण से कार्य का होना है।

(२) "कारे-कारे घन आकर अंगारे बरसाते हैं।"

(३) "शीतल चन्द्र अगिन सम लागत।"

(छ) षष्ठ विभावना--जब कार्य से कारण की उत्पत्ति हो। जैसे :—

(१) "तेरो मुख अरविन्द से बरसत सुषमा नीर।"

'कमल' कार्य 'नीर' कारण से उत्पन्न हुआ है।

(२) "कर कल्पद्रुम सो कियौ जस समुद्र उत्पन्न।"

कल्पद्रुम का कारण समुद्र होता है किन्तु यहाँ समुद्र की उत्पत्ति कल्पद्रुम मे कही गई।

(३) ललन चलन की बात सुनि, दहक-दहक हिय जात।
दृग सरोज से निकसि अलि, सलिल प्रवाह बहात॥

२६—विशेषोक्ति

प्रबल कारण के होते हुये भी कार्य की सिद्धि न होने के वर्णन को विशेषोक्ति कहते है।

उदाहरण —

(१) "आली इन नयनन को उपजी बड़ी बलाय।
नीर भरे नित प्रति रहे, तऊ न प्यास बुझाय।"

(२) "दौलत इन्द्र समान बढ़ी पै खुमान को नेक गुमान न आयो।"

(३) देख रहा है प्रतिपल अगणित जन प्रत्यक्ष मृत्युमुखगत भी।
रागान्ध चित्त भी होता नहीं है यह विषय बिमुख कभी॥

सदैव ससार को मृत्यु के मुख मे प्रवेश करते देखकर भी विषयो से विरक्त न होकर राग मे अन्धा चित्त विषयो मे ही लीन रहता है। प्रबल कारण के होते हुये भी कार्य की सिद्धि नही होती।

२७—विषम (In congrusty)

जहाँ विषम अर्थात् बेमेल घटना का वर्णन हो अर्थात जब ऐसी वस्तुओ का एक साथ रहना वर्णित हो जिनका सम्बध अनुचित हो तो वहाँ विषम अलकार होता है। जैसे —

'कहलाने एकत बसत अहिमूर मृग बाघ'

इसके ३ भेद हैं।

(१) **प्रथम विषम**—जहां एक दूसरे के विरुद्ध होने के कारण सम्बन्ध न घटे :—

(१) कहाँ मेघ औ हँस ! किन्तु तुम भेज चुके संदेश अजान।
तुड़ा मरालो से मंदर धनु जुड़ा चुके तुम अगणित प्राण ॥

यहां मेघ द्वारा सदेश भेजना, मरालो से विशाल धनुष तुडवाना सम्बन्ध की विषमता व्यक्त करता है।

(२) **द्वितीय विषम**—जहां क्रिया के विपरीत फल की प्राप्ति होती है:—

(१) नहीं तत्वतः कुछ भी मेरे आगे जीना मरना।
किन्तु आत्मघाती होना है घात किसी का करना ॥

यहां किसी पर घात करने की क्रिया से आत्मघाती होना विपरीत फल की प्राप्ति का द्योतक है।

(३) **तृतीय विषम**—कार्य और कारण के गुणो और क्रियाओ का एक दूसरे के विरुद्ध वर्णन करना —

(१) दीप सिखा रंगपीत ते धूम कढ़त अतिश्याम।
सेत सुजस छाये जगत प्रगट आपते श्याम ॥

यहां पीत वर्ण से श्याम वर्ण और श्याम से श्वेत वर्ण होना कार्य कारण की विषमता है।

२८—व्याजोक्ति

जहां किसी खुली बात अथवा गुप्त भेद या हास्य को छिपाने के लिये कोई बहाना किया जावे वहां व्याजोक्ति अलकार होता है।

उदाहरणः—

(१) ललन चलन सुन पलकु मे अँसुवा झलके आय।
भई लखान न सखिन हूँ, झूठे ही जमुहाय ॥

अश्रु आने पर जँभाई लेकर छिपाया गया है ताकि हृदय का सात्विक करुणा भाव व्यक्त न हो सके।

(२) बैठी हुती ब्रज की बनितान में आइ गयो कहूँ मोहन लाल है।
ह्वै गई देखते मोद मयी सुनिहाल भई वह बाल रसाल है ॥

रोम उठे तन कॉप्यो कबू मुस्क्यात लख्यौ सखियान को जाल है।
सीरी ब्यारि बहि सजनी उठी यों कहि कै उन ओढ्यो जु साल है॥

कृष्ण को देखकर गोपियो मे रोमाच, कम्प आदि सात्विक भाव उठे थे, उन्हे ठडी हवा बहने के बहाने शाल ओढ कर छिपा लिया।

२९—अन्योक्ति

जहाँ प्रस्तुत को न कहकर उसके समान दशा वाले अप्रस्तुत का वर्णन किया जाता है अथवा जहाँ किसी दूसरे व्यक्ति की बात किसी दूसरे व्यक्ति के ऊपर ढालकर, यद्यपि वह उस पर लागू नही होती, कही जाती है। भिखारीदास के शब्दो मे "अन्य उक्ति औरहि कहै, औरहि के सिर डारि"। इसी को सारूप्य निबन्धना अलकार भी कहते हैं।

उदाहरण —

(१) भयो सरित पति सालिपति, अरु रतननि को खानि।
कहा बडाई समुंदर की, जु पै न पीजति पानि॥

यहाँ समुद्र पर ढालकर धनी व्यक्ति को सम्बोधित किया गया है, कि धनी तो बहुत बडा है किन्तु उससे किसी को लाभ नही।

(२) काल कराल परै कितनो पै,
मराल न ताकत तुच्छ तलैया।

हस पर ढालकर कहा गया है कि विवेकी पुरुष कष्टो के बीच भी अनुचित कार्य की ओर प्रवृत्त नही होता।

(३) नहि पराग नहि मधुर मधु, नहि विकास इहि काल।
अलि कलि ही तै बँध्यो, आगे कौन हवाल॥

(४) दस दिन आदरु पाइ के करले आपु बखान।
जौ लगि काग सराध पख, तौ लगि तो सनमान॥

गोसाई दीनदयाल गिरि ने इस अलकार का प्रयोग सब से अधिक किया है।

३०—सहोक्ति

जहाँ एक ही शब्द या पद दो अर्थो का बोधक हो अर्थात उसका अन्वय

दो भिन्न अर्थवान पदो के साथ चरितार्थ होता है। इस अलकार मे सग साथ, सह समेत, सहित, युक्त आदि वाचक शब्दो का प्रयोग होता है। यह अलकार बहुत कुछ व्याकरण मे सबध रखता है।

(१) त्रिभुवन जय समेत वैदेही, बिनहि विचार वरै हठि तेही।

(२) मह मोहन सो मन मिल्यो, इन नैनन के सग।

(३) तुव सिर अरु अरि माथ नृप, भूमि परत इक साथ।

३१ — परिकरांकुर

जहाँ अभिप्राय के साथ विशेषणो से विशेष्य का कथन होता है वहाँ परिकर या परिकराकुर अलकार होता है।

उदाहरण —

(१) जमकरि मुँह तरहरि परयो यह धरहरि चितलाय।
विषय तृषा परिहरि अजौ, नरहरि के गुन गाय॥

यमरूपी हाथी को मारने के लिए नरसिह ही समर्थ है, अतएव यहाँ नरहरि शब्द साभिप्राय है।

(२) वामा भामा कामिनी, कहि बोलो प्रानेश।
प्यारी कहत लजात नहि, पावस चलत विदेश॥

यहाँ 'वामा' और 'भामा' शब्द साभिप्राय है। पावस ऋतु मे विदेश जाने को उद्यत नायक के प्रति नायिका कहती है कि ऐसे समय आपको मुझे प्यारी कहते लज्जा नही आती क्योकि यदि मै प्यारी ही होती तो आप विदेश ही क्यो जाते, अत: इस समय तो मुझे वामा अर्थात कुटिल और भामा कोप करने वाली ही कहिये।

(३) बदन मयक ताप त्रयमोचन।

यहाँ मयक शब्द साभिप्राय है अर्थात चन्द्रमा के समान सुन्दर और चन्द्रमा के समान शीतलता प्रदान करने वाला।

३२—परिवृत्ति

वस्तु का सम और असम के साथ अदल बदल को परिवृत्ति अलकार कहते है। परिवृत्ति का तात्पर्य है विनिमया या अदला बदली। यह दो प्रकार

का होता है (१) सम परिवृत्ति अर्थात उतम वस्तु का उत्तम वस्तु से विनिमय (२) विषम परिवृत्ति अर्थात उत्तम वस्तु देकर न्यून वस्तु लेना अथवा न्यून वस्तु देकर उत्तम वस्तु लेना।

उदाहरण —

समपरिवृत्ति

(१) लतिकाओं को नृत्य कला की शिक्षा देकर धीर समीर।
मधुर मधुर ले रहा जहाँ पर सुमन गन्ध उनका गंभीर॥

उपरोक्त पंक्तियों मे यमुना तट के वायु द्वारा लताओं को/नृत्य कला की शिक्षा देकर पुष्पो की मधुर गन्ध लेना वर्णित है।

(२) जो देवो कामारा उसे हम सादर उनको देंगे।
और ले सकेंगे जो उनसे हम कृतज्ञ हो लेंगे॥

विषम परिवृर्ति

(१) क्रान्ति हो चुकी श्रान्ति मेट अब आ मैं व्यंजन करूँगी।
मोती न्योछावर करके, वे असकण बीन धरूँगी॥

मोती जैसी आम वस्तु के साथ श्रम कला जैसी न्यून वस्तु का विनिमय।

(२) देखो त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ,
पैयेफल चारि एक फूल दै धतूरेका।

अथवा

लेहै वस्तु जहँ बालिका मुक्ताफल, दे बेर।

(३) जिसने जीर्ण शीर्ण अपना वह राम कार्य मे देकर देह।
लिया चंद्रसम उज्जवल यश है धन्य धन्य वह निस्सन्देह॥

अर्थात् जटायु द्वारा बूढे शरीर का त्याग कर चन्द्रमा के समान यश अर्जन करना विषम परिवृत्ति है। इस प्रकार न्यून का उत्तम से विनिमय है।

३३—अनुमान

'अनु' और 'मिति' से अनुमान शब्द निर्मित्त हुआ है। 'अनु' का अर्थ है ज्ञान। अत. अनुमान अलकार उसे कहते है जहाँ लक्षण अथवा चिन्ह द्वारा किसी वस्तु को ज्ञात किया जावे अर्थात साधन द्वारा साध्य का चमत्कारपूर्ण ज्ञान प्राप्ति हो।

उदाहरण —

(१) प्रिय मुख ससि निहचै बसतु मृगनैनी हिय सध।
किरन प्रभा तन पीतता मुकुलित है हरा पध॥

इसमे वियोगिनी के शरीर का पीलापन और मुकुलित नेत्र साधन द्वारा नायिका के हृदय मे पति के चन्द्रमुख की विद्यमानता सिद्ध किया गया है।

(२) हाँ वह कोमल है सचमुच ही कोमल है कितना।
मै इतना ही कह सकता हूँ तेरा मक्खन जितना॥
बना उसी से तो उसका तन तने आप बनाया।
तब तो आप देख अपनो का पिघल उठा उठधाया॥

३४—यथासंख्य (क्रम)

क्रम सो कहि पहले कछू, क्रम ते अर्थ मिलाय।
यों ही और निबाहिये, क्रम भूषन सु कहाय॥

जहाँ किसी एक क्रम से कहे हुए पदो, भावो एव अर्थो का उसी क्रम के साथ अन्वय होकर साहचर्य एव सहयोग सम्बन्ध हो।

उदाहरण:—

(१) अमिय हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत, जेहि चितवत इकबार॥

एक ही पदार्थ नेत्र मे अमृत, विष, मद तीन वस्तुओ श्वेत श्याय, रतनार—तीन रगो तथा जीना, मरना और झुकना तीन गुणो का क्रमानुसार वर्णन है।

(२) रंक लोह तरु कीट ए परसि न पलटै अग।
कहा नृपति, पारस कहा, कह चन्दन कह भृंग॥

यहाँ रक, लोह, तरु और कीट का सहयोग सबध नृपति, पारस, चन्दन और भृ ग से दिखाया गया है।

३५—परिसंख्या

जहाँ किसी वस्तु का एक स्थान से निषेध करके किसी दूसरे स्थान पर स्थापना हो अथवा जहाँ प्रश्नपूर्वक अथवा बिना ही प्रश्न के कुछ कहा जाय

वह उसी के समान किसी वस्तु के निषेध करने के लिये हो वहाँ परिसख्या अलकार होता है।

उदाहरण---

(१) क्या गाने के योग्य है मोहन के गुणगीत।
ध्यान योग्य क्या है कहो, हरिपद परम पुनीत।

यहाँ प्रश्नो के उत्तर सप्रमाण है।

(२) है भूषण क्या ? यश, नही रत्न आभूषण,
क्या कर्म ? आर्यशुभचरित नही है दूषण,
क्या नेत्र ? विमल मति, नही चक्षु गोलक यह।
है मित्र कौन ? सद्धर्म, न नर लौकिक यह॥

भूषण क्या है ? आदि प्रश्न है, यश इत्यादि उसके उत्तर है। रत्न जटिल आभूषण आदि निषेध के लिये कहे गये है।

(३) पत्रा ही तिथि पाइये, वा घर के चहुँ पास।
नितप्रति पूनो ही रहत, आनन ओप उजास॥

(४) सेव्य कहा ? तट सुरसरी, कहाधेय ? हरिपाद।
करन उचित कह ? धर्मनित, चित तजि सकल विषाद॥

३६—समुच्चय

समुच्चय का अर्थ है समुदाय या एक साथ इकट्ठा होना। जहाँ किसी कार्य को सिद्ध करने के लिये एक कर्त्ता के होते हुये अन्य कई कर्त्ता परस्पर स्पर्द्धा-युक्त होकर उस कार्य को सिद्ध करने के लिये समुदाय रूप मे अथवा एक साथ एकत्रित हो वहाँ समुच्चय अलकार होता है।

यह दो प्रकार का होता है —

(क) **प्रथम समुच्चय** —जहाँ एक काय को सिद्धि के लिए एक साधन। पर्याप्त हो तथापि अन्य साधनो का वर्णन हो —

(१) धन जोबन बल, अज्ञता, मोह मूल इक एक।
'दास' मिलै चारयो जहाँ पैये कहाँ विवेक॥

धन, यौवन, बल, अज्ञानता आदि मे एक का ही होना उचित अनुचित के

विचार न रहने के लिये पर्याप्त था किन्तु इन सबको एक ही स्थान पर एक भी करण समुच्चय अलकार निर्देशित करता है।

(२) कृष्ण के सग ही तुम्हारा नाम होगा, धाम होगा।
प्राण होगा, कर्म होगा, विभव होगा, कामना भी॥

(ख) द्वितीय समुच्चय—जहाँ गुण अथवा क्रिया या गुण और क्रिया दोनो एक ही काल मे अथवा अलग-अलग वर्णित किये जाये ?

(१) आली तू ही बता दे इस विजन बिना मै कहाँ आज जाऊँ।
दीना, हीना, अधीना, ठहर कर जहाँ शान्ति दूँ और पाऊँ॥

यहाँ उर्मिला मे दीना, हीना आदि गुणो और पाऊँ क्रिया का एक ही काल मे वर्णन है।

(२) पावस के आवस भये स्याम मलिन नभ थान।
रक्त भये पथिकन हृदय पीत कपोल तियान॥

यहाँ पावस के आगमन के समय स्याम, रक्त आदि गुणो का समुच्चय है।

३७—विरोध

जहाँ वस्तुत. विरोध नही होता फिर भी वहाँ जब विरोध दिखलाया जाता है तब विरोधालकार होता है।

उदाहरण—

(१) वा विरहिन को चाँदनी, लागति है जनु घाम।

(२) चन्द्रमुखी तुम बिनु भई, ज्वालामुखी समान।

(३) पाप करै सो तरै तुलसी,
कबहूँ न तरै हरि के गुन गाये।

३८—एकावली

जहाँ वस्तुओ के ग्रहण और त्याग की एक श्रेणी बन जाये, चाहे वह विशेषण भाव से हो अथवा निषेध भाव से, वहाँ एकावली अलकार होता है।

उदाहरण:—

(१) सोहत सो न सभा जहँ वृद्ध न, ते जु पढ़े कछु नाहीं।
ते न पढ़े जिन साधुन साधित, दीह दयान दिखे जिन माँही॥

सो न दया जु न धर्म धरै, धर धर्म न सो जहँ दान वृथा ही ।
दानन सों जहँ साँच न केसव, साँच न सो जु बसै छल छाँही ।।

वह सभा नही जहाँ वृद्ध न हो आदि कह कर उत्तरोत्तर निषेधात्मक शृङ्खला बाँधी गयी है ।

इस अलकार मे सारे पद या शब्द जजीर को कडियो की तरह परस्पर जडे रहते है ।

(२) मधु-बसन्त, मधु चैत है, मधु मदिरा मकरन्द ।
(३) गिरि पै वृष, वृष पै जुसिव, सिव पै सुरसरि नीर ।
(४) सो घनश्याम जो देय रस, रस वह जो सुख देय ।
सुख वह जाते देह मन, निज अभीष्ट लहि लेय ।।

एकावली--एक लडी वाले गले मे पहनने वाले हार को कहते है । जैसे हार मे पहले वाले मोती के साथ उसके बाद के मोती को स्थापित किया जाता है उसी प्रकार अलकार मे पूर्व कथित पदार्थ के साथ उत्तर कथित पदार्थ की स्थापना की जाती है ।

३९—आक्षेप

जहाँ पर कारण के प्रारम्भ मे ही प्रतिबन्ध कर दिया जाता है अर्थात जिसके अन्तर्गत अभीष्ट वस्तु की विशेषता को अभिव्यक्त करने के लिये निषेध या विधि प्रस्तुत किया जाय वहाँ आक्षेप अलकार होता है ।

'आक्षेप' शब्द के अनेक अर्थ है जैसे दोष लगाना, बाधा डालना, निषेध करना आदि । आक्षेप मे कही निषेध और कही विधि का आभास होता है । अतएव जब निषेधात्मक या विध्यात्मक चमत्कार होता है तभी यह अलकार होता है अन्यथा नही ।

यह अलकार तीन प्रकार का होता है :—

(क) **प्रथम आक्षेप** —जहाँ अपने द्वारा पहले कही गयी बात का निषेध हो अर्थात निषध न होकर भी निषेध का आभास हो —

(१) खिली दाख नव मालती बिरह विकल वह बाल ।
अथवा कहिबे मे कथा कहा लाभ इहि काल ।।

दूती नायक से कहना चाहती है कि 'नायिका तुम्हारे विरह मे मर जावेगी'

किन्तु वाक्यांश कहा नही। उत्तरार्द्ध मे निषेध नायिका की वर्णनातीत अवस्था को सूचित करने के लिये निषेध का आभास है।

(२) अबला तेरे विरह मे कैसे कटे रात।
निर्दय तुम से व्यर्थ है कहना भी वह बात ॥

पूर्वार्द्ध से विरह व्यथा निवेदन अभीष्ट या विवक्षित है उत्तरार्द्ध में निषेध है।

(३) सानुज पठइय मोहि बन कीजिय सबहि सनाथ।
नतरु फेरिये बन्धु दोउ नाथ चलौ मै साथ ॥

इसे वक्ष्यमाण निषेधाभास या उक्ताक्षेप अलकार भी कहते है।

(ख) द्वितीय आक्षेप—जहाँ पक्षान्तर ग्रहण कर कथित अर्थ का दूसरे दृष्टिकोण मे निषेध किया जावे अर्थात पहले निषेध करके फिर बात कही जावे :—

(१) छोड़ छोड़ फूल मत तोड़ आली। देख मेरा,
हाथ लगते ही यह कैसे कुम्हलाये हैं।
कितना विनाश निज क्षणिक विनोद मे हैं,
दुखिनी लता के लाल आँसुओ मे छाये हैं।
किन्तु नहीं चुन ले तू खिले खिले फूल सब,
रूप गुण गन्ध से जो तेरे मन भाये हैं।

उर्मिला ने पूर्वार्द्ध मे फूल तोडने का निषेध करके उत्तरार्द्ध मे तोडने को कहा।

(२) कत सकुचत निधरक फिरौ रतिया खोरि तुम्हैन।
कहा करौ जो जाय ये लगे लगौहैं नैन ॥

(३) मेरे नाथ जहाँ तुम होते दासी वही सुखी होती।
किन्तु विश्व की भातृ भावना यहाँ निराश्रित ही रोती।

(४) कवि न होउँ नहि चतुर कहावौ।
मति अनुरुप राम गुन गावौ ॥

(ग) तृतीय आक्षेप—अनिष्ट वस्तु का जहाँ विधान आभासित होता है अर्थात प्रगट मे तो विधि गुप्त रूप से निषेध होता है। इसे व्यक्ताक्षेप भी कहते हैं :—

(१) जाहु जाहु परदेस पिय मोहि न कछु दुख भीर।
लहहु ईस ते विनय करि, मै हूँ तहाँ सरीर॥

(२) तुम मुझे पूछते हो जाऊँ,
मैं क्या जवाब दूँ तुम्ही कहो।
जा कहने रुकती है जबान,
किस मुँह से तुम्हे कहूँ रहो॥

(३) कोपलते किसलय जबै होय कलिन ते कौल।
तब चलाइये चलने की चरचा नायक नौल॥

इनके अतिरिक्त काव्य दर्पण मे चार भेद और दिये है —

(१) निषेधात्मक आक्षेप—जहा विचार करने पर अपने कथन मे दोष पाया जाय।

'दसमुख मै न बसीठी आयऊ''

रावण के प्रति अंगद की इस उक्ति मे अंगद दूत का कार्य करता हुआ भो अपने इतत्व के रूप का निषेध करता है।

(२) निषेध भासात्मक आक्षेप—जहाँ निषेध का आभास मात्र दीष पडे —

चन्दन चन्द्रक चन्द्रिका चन्द साल मनिहार।
हौ न कहौ सब होय ये ताको दाहन हार॥

(३) विधि निषेधात्मक आक्षेप—जहा प्रत्यक्ष विधान मे गुप्त रूप से निषेध पाया जाय।

राज देन कहि दीन बन मोहि न सोच लवलेश।
तुम बिनु भरत हि भूप तिहि प्रजहिं प्रचंड कलेश।

(४) निषेध विध्यात्मक आक्षेप—जहाँ पहले किसी बात का निषेध कर पीछे उसका किसी प्रकार विधान किया जाये —

अकथनीय तेरो सुयश बरनौ मति अनुसार।

अथवा

तुलसी रेखा करक की मेटि सकै नहि राम।
मेटै तौ अचरज नहीं समुझि कियौ है काम॥

आक्षेप अलकार की परिभाषा शिवराज भूषण मे इस प्रकार दी है —

पहिले कहिये बात कछु पुनि ताको प्रतिषेध।
ताति कहत आच्छेप है, भूषन सुमेध ॥

४०—मुद्रा

जहाँ प्रस्तुत अर्थ के कथन करने वाले पदो या शब्दो से दूसरा अर्थ भी निकलता हो। जैसे—

(१) सुनि मुरली सुर धुनि[1] सखि गो मति[2] को सुविवेक।
जमुना[3] यक कोहित भयो, सरसइ[4] हिय धरि टेक॥

इस दोहे मे प्रस्तुत अर्थ के अतिरिक्त सुरधुनि (गगा), गोमति (गोमती), जमुना और सरसइ (सरस्वती) नदियो के नाम भी अर्थ से निकलते है।

इस अलकार मे श्लेषालकार की भाँति द्वयार्थक शब्दो का प्राधान्य रहता है।

४१—तद्गुण

जहाँ कोई वस्तु अपने गुण को त्यागकर समीपवर्ती उत्कृष्ट एव विशिष्ट गुण वाली अन्य वस्तु के गुण को ग्रहण करती दिखलाई जाती है। मतिराम, भिखारीदास और भूषण आदि सभी ने यही परिभाषा दी है।

(१) "जहाँ आपनो रंग तजि, लेत और को रंग।" —मतिराम
(२) "तद्गुण तजि गुन आपनो, सगति को गुन लेइ।" —भिखारी
(३) "जहाँ आपनो रग तजि, गहै और को रग।" —भूषण

उदाहरण :—

(१) अधर धरत हरि कै परत, ओठ, डीठि पट ज्योति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्र धनुष रंग होति॥

यहाँ अधर पर रखी बाँसुरी कृष्ण के होठ, दृष्टि और पट ज्योति के ससर्ग मे इन्द्रधनुष का रग ग्रहण कर रही है—ओठ (लाल), दृष्टि (उज्जवल), पट (पीला)।

(२) "यह शैशव का सरल हास है, सहसा उर से है आ जाता।
यह ऊषा का नव विकास है, जो रज को है रजत बनाता।"
—पन्त

यहाँ रज अपना रग छोडकर ऊषा के ससग मे रजत बन जाता है ।

४२—अतद्गुण

समीपवर्ती वस्तु के गुण ग्रहण किया जाना सम्भव हो फिर भी ग्रहण न करना जहाँ दिखलाया जावे वहाँ अतद्गुण अलकार है ।

उदाहरण.—

(१) चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग ।

(२) दुष्ट न तजत स्वभाव, साथ सज्जन के रहके ।
नीम न छोडे गन्ध, इत्र को साथ किये से ॥

(३) आप अपना हृदय उज्जवल कह रहे,
रग उस पर प्रिय नहीं चढ़ता कहीं ।
राग पूरित हृदय मे रखती उसे,
रक्त फिर भी वह कभी होता नहीं ॥

नायिका के राग भरे हुये हृदय मे रह कर भी नायक के उज्ज्वल हृदय का रक्त वर्णन होना दिखलाया गया है ।

४३—मीलित

मीलित शब्द का अर्थ है मिलजाना । एक ही प्रकृति एव गुणवाली वस्तुयें परस्पर मे अभेद रूप से ऐसी मिलजाती है कि उनमे से एक के गुण दूसरे के गुणो से तिरोभूत हो जाते है अर्थात जहाँ दो वस्तुओ मे सादृश्यता न लक्षित हो ।

उदाहरण.—

(१) पान पीक अधरान मे सखी लखी नहिं जाय ।
कजरारी अँखियान मे, कजरा री न लखाय ॥

(२) अधर पान अजन नयन लगा महाउर पाँय ।
सिय तन ये दरसत नहीं, अंगन रहे पमाय ॥

४४—उन्मीलित

जहाँ दो वस्तुओ मे सादृश्य के होने पर भी किसी विशेष कारण से उनमें भेद या अन्तर दिखलाई पडे ।

उदाहरण :—

(१) कुन्द कलिन की मालिका, उर लहरति न लखाय।
हैं मलीन कुम्हिलाय जब, तब वह जानी जाय॥

(२) चंपक हरवा गर मिलि अधिक सोहाय।
जानि परै सिय हियरै जब कुम्हिलाय॥

गले के रग मे मिला चम्पकहार कुम्हलाने पर ही गोरे अंग से पृथक लक्षित होता है।

४५—व्याजस्तुति और व्याजनिन्दा

जहाँ किसी वस्तु की निन्दा स्तुति के द्वारा की जावे अथवा किसी स्तुति के बहाने निन्दा की जावे वहाँ व्याज-स्तुति और व्याज-निन्दा अलङ्कार होता है।

उदाहरण :—

स्तुति द्वारा निन्दा :—

(१) "राम साधु, तुम साधु सुजाना।
राम मातु भलि मैं पहिचाना॥"

(२) सेमर तू बड़ भाग है, कहा सराह्यो जाय।
पंछी करि फल आस तेहि, निसदिन सेवहि आय॥

निन्दा द्वारा स्तुति :—

(१) का कहौं कहत न बनै, सुरसरि तेरी रीति।
ताके तू मूंड़े चढै, जो राखै करि प्रीति॥

(२) एरी मेरी गंगा तेरी अद्भुत लहर है।

४६—अप्रस्तुत प्रशंसा

जहाँ प्रस्तुत का बोध कराने के लिये अप्रस्तुत का वर्णन किया जावे। अर्थात जिस विषय को कहना हो उसे स्पष्ट शब्दो मे न कहकर इस ढग से कहा जावे कि वह वास्तविक बात लक्षित हो जावे वहाँ अप्रस्तुत प्रशसा अलकार होता है। इसके ५ भेद हो तेहै।

अप्रस्तुत प्रशसा

कारण निबन्धना काय निबन्धना विशेष निबन्धना सामान्य निबन्धना सारूप्य-निबन्धना

(अ) कारण निबन्धना—जहाँ कार्य कहना हो किन्तु कहा जाय कारण, जैसे —

(१) चन्द्रमुख ठडी हवा से सूखता है गेह मे।
वह घाम मे लू से झूलस कर हा मिलेगा खेह मे॥
चपाकली सी देह वह क्यो खुरखुरी भूपर कभी।
कब सो सकेगी, सो रही है फूल ऊपर जो अभी॥

श्री राम सीता को वन साथ ले चलना नही चाहते किन्तु इसको स्पष्ट न कह कर अप्रस्तुत कारणो को बाधकरूप मे उल्लेख करते है।

(२) गर्भन के अर्भक दलन, परसु मोट अति घोर।

यहाँ परशुराम अपने फरसे का वर्णन करके उसके कार्य मृत्यु की सूचना दी है।

(ब) कार्य निबन्धना—इष्ट ही कारण का कथन किन्तु कार्य का कथन कर के कारण की सूचना दी जावे। जैसे —

(१) है चन्द्र हृदय मे बैठा उस शीतल किरण सहारे।
सौन्दय सुधा बलिहारी चुगता चकोर अंगारे॥

यहाँ चकोर के कार्य के द्वारा यह कहना चाहता है कि सच्चा प्रेम अमर है।

(२) मातु पितहि जनि सोच बस, करसि महीप किसोर।

यहाँ परशुराम का तात्पर्य है कि मै तुम्हे मार डालूँगा किन्तु कार्य की उक्ति करते है कि माता पिता को शोकवश मत कर।

(स) विशेष निबन्धना—अप्रस्तुत विशेष के कथन से प्रस्तुत सामान्य का बोध कराना। जैसे —

(१) एक दम से इन्दु तम का नाश कर सकता नहीं।
किन्तु रवि के सामने तम का पता चलता नहीं ॥

दुष्ट उग्रता को नीति से ही मानते है, इस प्रस्तुत सामान्य का कथन विशेष कथन द्वारा किया गया।

(२) काटि लेत तरु बाढई, सूधे सूधे जोय।
बन मे बके वृक्ष को काटत है नहि कोय ॥

सीधे को सभी कष्ट देते है तथा टेढे मनुष्य को कोई नही छूता, इस साधारण उक्ति का कथन विशेष उक्ति द्वारा किया गया है।

(द) **सामान्य निबन्धना**—जहाँ सामान्य बात कह कर विशेष का तात्पर्य जताया जाता है। जैसे—

(१) जग जीवन मे है सुख दुख, सुख दुख मे है जग जीवन,
है बँधे बिछोह मिलन दो देकर चिर स्नेहालिगन।

'सब दिन समान नही जाता' इस विशेष उक्ति का कथन सुख-दुख, सयोग-वियोग के आने-जाने की साधारण उक्ति द्वारा स्पष्ट किया है।

(२) बड़े प्रबल सो बैर करि करत न सोच विचारि।
ते सोवत बारूद पर, पट मे बाधि अगार ॥

यहाँ विशेष बात कहना है कि अपने से सबल से वैर नही करना चाहिये।

(क) **सारूप्य निबन्धना**—प्रस्तुत का कथन न कर अप्रस्तुत का वर्णन करना, इसे अन्योक्ति अलकार भी कहते है। जैसे—

(१) स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा देखु विहग विचारि।
बाज पराये पानि परि तू पछी न मारि ॥

(२) काल कराल परै कितनो, पै मराल न ताकत तुच्छ तलैया।

अर्थात विवेकी पुरुष मुसीबत पडने पर भी अनुचित कार्य नही करता। मराल अप्रस्तुत द्वारा कथन किया गया है।

४७—अतिशयोक्ति

शब्द चिन्तामणि मे इसकी परिभाषा दी है—"अतिशयत' अतिक्रान्ते" अर्थात जहाँ किसी की प्रशसा करने के लिये किसी बात को बढा-चढा कर कहे,

सामान्य बातो का उल्लघन करे तथा लोक-मर्यादा के विरुद्ध वर्णन करें। इस अलकार का विषय बहुत व्यापक है। शब्द और अर्थ की जो विचित्रता है। वह अतिशयोक्ति के ही आश्रित है। कतिपय आचार्यों ने इसे अन्य अलकार से अधिक उत्कर्ष दिया है और किसी न किसी रूप मे न्यूनाधिक इसे सभी अलंकारो मे निहित भी मानते है जोकि किसी अश तक कथन सार्थक भी है।

अतिशयोक्ति के अग्रेजी मे Hyperbole तथा उर्दू मे 'मुबालगा' कहते हैं तथा इसके मुख्य सात भेद हैं :—
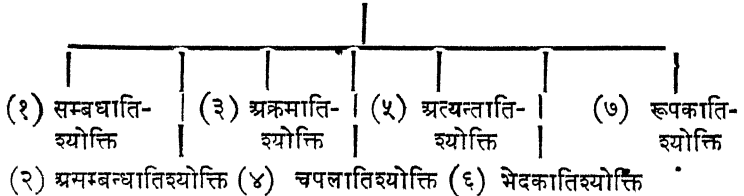
(१) **सम्बधातिश्योक्ति**—जहाँ उपमेय और उपमान मे वास्तविक सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध दिखाया जावे अर्थात योग्य मे अयोग्य और अयोग्य में योग्य का प्रकाशन किया जाता है।

उदाहरण:—

> "अति सुन्दर लखि मुख सिय तेरो,
> आदर हम न करत ससि केरो।"

यहाँ चन्द्रमा सम्माननीय होने पर भी मुख के सौन्दर्य के समक्ष अनादर का पात्र बन जाता है।

> "जो सम्पदा नीच गृह सोहा,
> सो विलोक सुर नायक मोहा॥"

नीच घर की सम्पदा इन्द्र को मोहने योग्य तो नही होती फिर भी अयोग्यता मे योग्यता का दिग्दर्शन कराया गया है।

(२) **असम्बन्धातिश्योक्ति**—जहाँ दो वस्तुओ मे सम्बन्ध होने पर भी सम्बन्ध का निषेध कर दिया जावे अर्थात् योग्य होते हुये भी अयोग्य बताया जावे।

उदाहरण:—

"जेहि बर बाजि राम असवारा ।
तेहि सारदा न बरनै पारा ।"

शारदा मे वर्णन करने की शक्ति होते हुये भी उन्हे अयोग्य ठहराया गया कि वह उस घोडे का वर्णन नही कर सकती जिस पर राम सवार हैं ।

युग उरोज तेरे अली नित-नित अधिक बढ़ाये ।
तेरी भुज लतिकान मे अब ये नही समाये ।

अथवा

औषधालय भी अयोध्या मे बने तो थे सही ।
किन्तु उनमे रोगियो का नाम तक भी था नही ।।

औषधालय मे रोगियो का न रहना असम्बन्ध की कल्पना की गयी है ।

(३) अक्रमातिशयोक्ति—जहाँ कारण और कार्य एक ही साथ होता है और उनके क्रम मे कोई अन्तर न पडे । यो नियमत कारण सदैव पहले होता है, तदनन्तर कार्य होता है, किन्तु यहाँ प्रशसा के लिये दोनो का एक साथ होना दिखाया जाता है ।

"क्षण भर उसे सधानने मे वे यथा शोभित हुये,
है भाल नेत्र ज्वाल हर ज्यों छोड़ते क्षोभित हुये ।
वह शर इधर गाण्डीव गुण से भिन्न जैसे ही हुआ,
धड़ से जयद्रथ का उधर सिर छिन्न वैसे ही हुआ ।"

बाण का छूटना और सिर का कटना दोनो एक ही साथ घटित हुआ है ।

"उठ्यो संग गज कर कमल चक्र चक्रधर हाथ ।
कर ते चक्र सुनक्र सिर धर ते बिलग्यो साथ ।"

(४) चपलातिशयोक्ति—इसमे कारण का ज्ञान मात्र होते ही कार्य का होना वर्णित होता है ।

उदाहरण—

(अ) तब सिव तीसर नयन उघारा ।
चितवत काम भयेउ जरि छारा ।।

(ब) बिमल कथा कर कीन्ह अरम्भा ।
सुनत नसहिं काम मद दम्भा ॥

(स) आयो आयो सुनत ही सिव सरजा तुव नॉव ।
वैरि नारि दृग जलन सो बूड़ि जात अरि गॉव ॥

इन सभी कारण की उपस्थिति मात्र से कार्य की पूर्ति हो गई ।

(६) मै जभी तौलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूँ ।
भुजलता फॅसा कर नर तरु से झूले सी झोके खाती हूँ ॥

(५) अत्यन्तातिशयोक्ति—जहाँ कारण के पहले ही कार्य का होना वर्णित होता है ।

(१) कवि तरुवर सिव सुजस रस सीचे अचरज मूल ।
सफल होत है प्रथम ही, पीछे प्रगटत फूल ॥

(२) "रावरी कृपान रन रग बीच रामचन्द्र,
बक्र वढि फन पै बहाती यो चढति है ।
प्रान पहले ही हरे असुर संघातिन के,
पीछे पन्नगी लौ म्यान बॉबी ते कढ़ति है ।"

कृपाण का म्यान से निकलना कारण है किन्तु उसके प्रथम ही राक्षसो की मृत्यु रूपी कार्य हो जाता है ।

(३) हनूमान की पूॅछ मे, लगन न पायो आग ।
लका सारी जरि गयी, गये निसाचर भाग ॥

(६) भेदकातिशयोक्ति – उपमेय और उपमेय मे कोई भेद न होने पर भी उपमेय को भिन्न बताने के लिये अथवा उत्कर्ष लाने के लिये न्यारे, निराला, औरै, दूसरा ही आदि वाचक पदो द्वारा अत्यन्त प्रशसा की जाती है ।

(१) "अनियारे दीरघ दृगनि, किती न तरुनि समान ।
वह चितवनि औरै कछू, जेहि बस होत सुजान ॥

चितवन तो एक ही है किन्तु 'औरै' वाचक शब्द द्वारा भिन्नत्व बताया है ।

(२) औरै कछु बोलनि चलनि, औरै कछु मुस्कान ।
औरै कछु सुख देत है, सकै न बैन बखानि ॥

(३) जगत को जैत बार जीत्यो औरंगजेब,
न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की।

यहाँ न्यारी शब्द से शिवाजी की रीति अन्य रीतियो से भिन्न बताकर, प्रशसा की है।

(७) रूपकातिशयोक्ति—इस अलकार मे उपमेय का कथन न किया जाकर केवल उपमान के कथन द्वारा उपमेय का वर्णन किया जाता है अर्थात् भेद मे अभेद कहा जाता है। उपमेय और उपमान दो पदार्थ होते हुए, दोनो मे भेद होते हुये भी उपमान के कथन के द्वारा ही उपमेय का ज्ञान करा दिया जाता है।

रामायण मे तुलसीदास ने रामचन्द्र के मुख मे सीता जी के लिये कहलाया है —

खञ्जन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना ॥
(१) कुन्द कली दाडिम दामिनो। सरद कमल ससि अहिभामिनी॥
वरन पास लनोज धनु हसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥
श्रीफल कमल कदलि हरखाही। नेकु न सक सकुच मनमाँही ॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाय जनु राजू ॥

कहने का तात्पर्य यह है कि जब तुम थी तब ये सब उपमान तुम्हे देख कर लज्जित रहते थे। किन्तु अब तुम्हारा हरण हो जाने से ये सब प्रसन्न हुए है। इन सभी उपमानो द्वारा वास्तव मे सोता के अग-प्रत्यग का प्रतीक एव चित्रण है, जैसे.—

खजन = नेत्र, सुक = नाक, कपोत = ग्रीवा, मृग, मीन = नेत्र, मधुप = बाल, कोकिला = वाणी, कुन्दकली = दात, दाडिम = दात, दामिनी = मुस्कान, शरद कमल, ससि = मुख, अहिभामिनी = वेणी, वरुण पास = बिखरे हुये बाल, मनोज धनु = भौहै, गज = चाल, केहरि = कटि, श्रीफल = कुच, कमल = हाथ, कदली = जघा।

(२) बाँधा विधु को किसने, इन काली जंजीरों से।
मणिवाले फणियो का मुख, क्यो भरा हुआ हीरो से॥

(३) विद्रुम सीपी-सम्पुट मे मोती के दाने कैसे ?
है हस न, पर शुक फिर क्यो चुगने को मुक्ता ऐसे ।

इसमे ओष्ठ, दन्त और नासिका उपमेयो का निगरण कर विद्रुम, सीपी, मोती तथा शुक द्वारा बोध कराया है ।

आचार्य दण्डी ने सन्देह, निश्चय, मीलित और अधिक आदि बहुत से अलकारो को पृथक न मानकर अतिशयोक्ति प्रकरण के अन्तर्गत ही लिखा है ।

४८—अपन्हुति

मिथ्या कीजै सत्य को, सत्य जु मिथ्या होत ।
अपन्हुति षट भेद को, बरनत है कवि गोत ॥

अपन्हुति का तात्पर्य है छिपाना, निषेध गोपन, वारण आदि । इस अलङ्कार मे उपमेय का निषेध कर अथवा छिपाकर उपमान की स्थापना की जाती है अर्थात् जहाँ किसी सत्य बात को छिपाकर उसके स्थान पर किसी असत्य बात का आरोप किया जाता है । नही, न, मिस अथवा ब्याज इसके वाचक शब्द होते है ।

इसके ७ भेद हैं :—

अपन्हुति के भेद

शुद्ध	हेतु	पर्यस्त	भ्रम	छेका	कैतव	विशेष

(1) शुद्धापन्हुति — जहाँ उपमेय अर्थात् सत्य का निषेध करके उपमान अर्थात् असत्य की स्थापना की जाय ।

उदाहरण :—

"पहिरे स्याम न पीतपट, घन मे बिज्जु बिलास ।"

अर्थात् पीताम्बर पहने श्याम को देखकर बिजलीमय आकाश की भान होता है ।

"चिबुक देख फिर चरण चूमने चला चित्त चिर चेरा ।
वे दो ओठ न थे राधे था एक फटा उर तेरा ॥"

चूनो होय न चतुर तिय क्यों पट पोंछो जाय ॥"

अर्थात् नाक मे पहने बेसर के मोती की श्वेत झलक नायिका के होठो पर पडती है जिसे वह चूना समझकर बार-बार पोछती है किन्तु वह साफ नही होता तब उसकी सखी कहती है कि यह चूना नही है मोती की झलक है।

"आली लाली लखि डरपि, जनि टेरहु नन्दलाल।
फूले सघन पलास ये, नहि दावानल ज्वाल॥"

(v) छेकापन्हुति—जहाँ पहले किसी बात को प्रगट कर फिर उसे छिपाने के लिये उसका निषेध किया जावे और चतुरता से दूसरी बात बना दी जावे।

उदाहरण :—

"सोभा सदा बढावन हारा। आँखिन ते छिन करूँ न न्यारा॥
आठ पहर मेरा मन रंजन। क्यो सखि साजन? ना सखि अँजन॥"

कोई नायिका अपने प्रियतम का गुणगान करती हुई कहती है कि-वह शोभा बढाने वाले है, चित्त को आह्लादित करने वाले है, इसीलिये मैं क्षण भर को भी उन्हे अपनी आँखो से दूर नही करती। जब सखी पूछती हैं कि क्या वह तुम्हारे साजन है तो वह सत्य को तुरन्त छिपाकर कहती है, नही तो! मैं आँखो के काजल के बारे मे बात कर रही हूँ।

"ऐनक दिये तने रहते हैं, अपने मन साहब बनते हैं।
उनका मन औरों के काबू, क्यो सखि सज्जन? ना सखि बाबू॥"

ऐनक का अर्थ है चातुर्य और अलङ्कार मे चातुर्य के ही द्वारा सत्य का निषेध किया जाता है। प्रहेलिका का मुकरी नामक रूप इसके अच्छे उदाहरण है।

(vi) कैतवापन्हुति—जहाँ मिस, व्याज आदि वाचक शब्दो द्वारा सत्य का निषेध कर असत्य वस्तु की स्थापना की जाय।

उदाहरण —

"निपट नीरव ही मिस ओस के, नयन से गिरता बहु वारि था।"

ओस के बहाने आँसू गिर रहे हैं।

"रवि निज उदय व्याज रघुराया। प्रभु प्रताप सब नृपनि दिखाया॥"

सूर्योदय की सत्य बात का निषेधकर राम के प्रताप रूपी असत्य बात की स्थापना व्याज द्वारा की गई है।

"मुख बाल रविसम लाल होकर ज्वाल सा बोधित हुआ।
प्रलयार्थ उनके मिस वहाँ क्या काल ही क्रोधित हुआ॥"

(vii) विशेषापन्हुति—जहाँ विशेष प्रकार से निषेध या गोपन के कार्य का वर्णन किया जाता है।

उदाहरण —

पुलक प्रकट करती है धरणी हरित तृणो की नोको से।
मानों झीम रहे है तरु भी मन्द पवन के झोको से॥"

यहाँ हरित तृण की नोको को गोपन कर पृथ्वी के पुलक को अभिव्यक्ति की गई है।

४९---दीपक

जहाँ उपमेय और उपमान का एक ही धर्म कहा जाय वहाँ दीपक अलङ्कार होता है।

उदाहरण .—

"रहिमन पानी राखिये बिना पानी सब सून।
पानी गये ना ऊबरै मुक्ता मानिक चून॥"

इसमे पानी प्रस्तुत और मुक्ता, मानिक तथा चून अप्रस्तुत का एक ही धर्म है "न ऊबरै"।

सोहत भूपत दान सो फल-फूलन आराम।"

भूपति प्रस्तुत और आराम अप्रस्तुत का एक ही धर्म है 'सोहत'

"संग ते जती कुमन्त्र ते राजा। मान ते ज्ञान पान ते लाजा॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी, नासहि बेगि नीति अस सुनी॥

५०---उल्लास

जहाँ किसी व्यक्ति या वस्तु के गुण एव दोष से किसी अन्य व्यक्ति व वस्तु को गुण या दोष प्राप्त होता दिखलाया जाता है। यह अलङ्कार सम्पर्क प्रभाव का प्रदर्शक है। इसमे "सगति ते गुण ऊपजै, सगति ते गुन जाय" के सिद्धान्त को प्रधान्य एव बल दिया जाता है।

इसके मुख्यतया ४ भेद माने गये हैं :—

(क) गुण से गुण—

"सठ सुधरहिं सत संगति पाई।
पारस परसि कुधातु सोहाई॥"

(ख) दोष से दोष—

संगति को गुन साँच है, कहै जु गुनी रसाल।
कुटिल कूबरी संग ते, भये त्रिभंगी लाल॥"
"जा मलयानिल लौट जा यहाँ अवधि का शाप।
लगे न लू होकर कहीं तू अपने को आप॥"

(ग) गुण से दोष—

"जो काहू के देखहिं विपती, सुखी भये मानहु जगनृपती।"
"जरहिं सदा पर सम्पत्ति देखी"

(घ) दोष से गुण—

"खल परिहास होय हित मोरा।"
"व्यथा भरी बातों ही मे रहता है कुछ सार भरा।
तप मे तप कर ही वर्षा मे रहती है उर्वरा धरा॥"

यह स्मरणीय है कि उल्लास अलङ्कार असंगति के प्रथम रूप से कुछ मिलता-जुलता है, दोनो मे भेद यह है कि इसमे कार्य कारण सम्बन्ध ही पर जोर दिया जाता है।

५१—अवज्ञा

जहाँ एक व्यक्ति, वस्तु, पदार्थ के गुण दोष से किसी अन्य व्यक्ति, वस्तु पदार्थ आदि मे गुण या दोष का संचार या समावेश नही होता। यह उल्लास अलङ्कार का उल्टा है।

इसके मुख्य दो रूप हैं।

(क) गुणात्मक—जहाँ एक के गुण से किसी दूसरे मे गुण न होवे।

उदाहरण —

फूलै फलै न बेत जदपि सुधा बरखहि जलद।
मूरख हृदय न चेति, जो गुरु मिलहिं बिरंचि सम॥

"बड़वानल सह सिन्धु जल उषन न होत निहार"

(ख) **दोषात्मक**—जहाँ एक के दोष से दूसरे मे दोष न आवे।

उदाहरण—

"चन्दन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग।"
"दोष बसन्त को नेकु नहीं
उलहै न करील की डार जु पाती।"

५२—सामान्य

जहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत मे गुण सादृश्य होने के कारण एकात्मक और अभेद का वर्णन हो।

उदाहरण.—

"भरत राम एकै अनुहारी। सहसा लखि न सके नर नारी।
लखन शत्रुसूदन एक रूपा। नख सिख ते सब अंग अनूपा॥"

यहाँ भरत-राम और लक्ष्मण-शत्रुघ्न मे भेद रहते हुए भी अभेद या एकात्मकता का वर्णन है।

५३—विशेष

विशेष का अर्थ है असामान्य, विलक्षण अथवा असाधारण, इसके तीन भेद है:—

(क) **प्रथम विशेष**—जहाँ प्रसिद्ध आधार के बिना आधेय का वर्णन हो, जैसे:—

"आज पतिहीना हुयी शोक नहीं इसका
अक्षय सुहाग हुआ मेरे आर्य पुत्र तो
अजर अमर है सुयश के शरीर में।"

यहाँ पति आधार के बिना अक्षय सुहाग रूपी आधेय का वर्णन है।

"बिन बारिद बिजुरी बिना, बारि लसत युग मीन।
बिधु-ऊपर तम तोम है निरखी रीत नवीन॥"

(ख) **द्वितीय विशेष**—जहाँ एक ही समय मे एक ही रीति से एक वस्तु का अस्तित्व अनेक स्थानो पर दिखलाया जाय, जैसे :—

"जल मे थल मे गगन मे जड़ चेतन मे दास।
चर अचरन में एक है परमात्मा प्रकाश॥"

परमात्मा के प्रकाश का अस्तित्व एक ही समय मे जल, स्थल, गगन, जड, चेतन, गोचर, अगोचर सभी मे मौजूद है।

"आँखो की नीरव भिक्षा मे आँसू के मिटते दागों मे,
ओठो की हँसती पीडा मे, आहों के बिखरे त्यागो मे
कन-कन मे बिखरा है निर्मम, मेरे मानस का सूनापन।"

एक ही काल मे एक ही स्वभाव से सूनेपन का अनेक स्थानो पर अस्तित्व वर्णित है।

(ग) तृतीय विशेष—जहाँ थोडे आरम्भ से अधिक सिद्धि की जाय, जैसे —

"धो ली गुह ने धूल अहिल्या तारिणी,
कबि का मानस कोष बिभूति विहारिणी।
प्रभु पद धोकर भक्त आप भी धो गया,
कर चरणामृत पान अमर वह हो गया॥"

मात्र चरणामृत पान से अमरत्व प्राप्त करना थोडे से अधिक की सिद्धि है।

"पाइ चुके फल चार हू करि गगा जल पान।"
आज की या छबि देखि सखी, अब देखिबे को न रहो कछु बाकी।"

५४—अधिक

जहाँ आधार से आधेय की अधिकता अथवा आधेय से आधार की अधिकता का वर्णन किया जावे।

उदाहरण —

(क) आधार से आधेय का बडा कहना —

"जामे भारी भुवन सब गॅवई से दरसात।
तेहि अखड ब्रह्माड मे तेरो जस न अमात॥"

(ख) छोटे आधार मे बडे आधेय को रखना —

"तुम जो गिरिवर कर धर्यो, सो है हलकी बात।
गिरि समेत मै उर धर्यो, नेकौ न गरु आत॥"

अथवा

ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै।
मप उदर सो वासी यह उपहासी, सुनत धीर थिर न रहै॥

५५—लेश

जहाँ गुण मे दोष और दोष मे गुण की कल्पना की जाय।

मम्मट और विश्वनाथ ने इसे अलग अलकार नही माना है। अप्पय ने लिखा है। "लेश स्याद्दोषगुणायोर्गुणदोषत्वकल्पनम्" और इसके दो रूप माने है। मतिराम, भूषण भिखारीदास, लछिराम, पद्माकर, जसवन्तसिह आदि आचार्यो ने भी लेश अलङ्कार को २ रूपो सहित माना, सिवाय गोकुल कवि जिन्होने लेश के ४ रूप माने है—

(१) गुण मे दोष
(२) दोष मे गुण
(३) गुण मे गुण
(४) दोष मे दोष स्थापन

उदाहरण —

"अन्धकार सब दूरि करि, दीपक करहु प्रकाश।
सहज सनेही ह्वै करहु, प्रिय पतग को नाश॥"

यहाँ गुण मे दोष की कल्पना की कल्पना की गई है।

"रहिमन विपदा ही भला जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत मे जानि परत सब कोय।"

अथवा

"मरन भलो बरु बिरह ते यह विचार चित जोय।
मरन छुटे दुख एक कौ, बिरह दुहूँ दुख होय॥"

यहाँ दोष मे गुण की कल्पना की गई है।

५६—मुद्रा

जहाँ प्रस्तुत अर्थ के कथन करने वाले शब्दो से दूसरा अर्थ भी निकलता हो।

उदाहरण —

"सुनि मुरली सुर-धुनि सखी, गोमति को सुबिवेक।
जमुनायकु को हित भयो, सरसइ हिय धरि टेक॥"

इस दोहे मे प्रस्तुत अर्थ के अतिरिक्त सुरधुनि (गगा), गोमति (गगा) जमुना और सरसइ (सरस्वती) नदियो के नाम भी सूचित होते है।

५७—परिणाम

जहाँ उपमान स्वय किसी कार्य को करने मे असमर्थ होने पर उपमेय की सहायता मे उस कार्य को करने मे समर्थ होता है।

उदाहरणः—

"पद पकज ते चलत व कर पंकज लै कजु।
मुख पकज ते कहत हरि बचन रचन मुद मंजु॥"

इस दोहे मे पकज जब तक पद, कर और मुख से एक रूप नही हो जाता तब तक चलने, लेने और कहने का कार्य नही सिद्ध हो सकता।

"कर कमलन धनु सायक फेरत"

यहाँ कर के उपमान कमल द्वारा 'धनु सायक फेरना' दिखाया गया है!

५८—सार

पूर्वकथित वस्तु की अपेक्षा उत्तरोत्तर कथित वस्तु का धाराप्रवाह रूप से अन्त तक अधिकाधिक उत्कर्ष वर्णन करने को सार अलकार कहते है।

उदाहरण—

(i) "जग मे जीवन सार है, तासो संपति सार।
संपति सो गुन सार हैं, गुन सो पर उपकार॥"

(ii) "रहिमन वे नर मर चुके जो कहुँ माँगन जाय।
उनते पहिले वे मरे, जिन मुख निकसत नाँय॥"

(iii) मखमल ते कोमल महा, कदलि गरभ को पात।
ताहू ते कोमल अधिक, राम तुम्हारे गात॥

५९—हेतु

जहाँ कारण और कार्य का अभेद दिखलाया जाये अर्थात् कारण और

कार्य दोनो एक साथ रहे अथवा दोनो का एक सहित वर्णन किया जावे।

उदाहरण—

"घरु घरु डोलत दीन ह्वै जनु जनु जाचतु जाइ।
हिये लोभ चसमा चखनु लघु पुनि बड़ौ लखाइ॥"

यहाँ लोभ रूपी चश्मा के कारण छोटे को भी बडा करके दीखने का कार्य वर्णित है।

"मेरी रिद्धि समृद्धि है, तुव दाया रघुनाथ।"
"कोऊ कोरिक सग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो सम्पति यदुपति सदा, त्रिपति विदारनहार॥"

९०—उदाहरण

कोई साधारण बात कह कर 'ज्यो, जैसे' वाचक शब्दो द्वारा किसी विशेष बात से जहाँ समता दिखाई जाती है वहाँ उदाहरण अलङ्कार होता है।

उदाहरण—

(१) "तेरा सॉई तुज्झ मे, ज्यों पुहुपन में बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों फिर-फिर ढूँढ़ै बास॥"

(२) "बूँद अघात सहै गिरि कैसे।
खल के वचन सन्त सह जैसे॥"

(३) बुरो बुराई जो तजै सो चित खरा डरातु।
ज्यो निकलंक मयंकु लखि गनै लोग उत्पातु॥"

'उदाहरण' और 'दृष्टान्त' अलङ्कारो मे मात्र इतना अन्तर है कि दृष्टान्त मे ज्यो, जैसे आदि वाचक शब्द नही होते है जब कि उदाहरण मे होते हैं। साथ ही दृष्टान्त मे एक बात ऊपर कही जाती है और उसी से मिलती जुलती दूसरी बात नीचे की पक्ति मे कही जाती है, जब कि उदाहरण अलङ्कार मे ऊपर की पक्ति मे जो बात कही जाती है उसकी पुष्टि के लिए नीचे की पक्ति मे समतापूर्ण बात कही जाती है।

प्राचीन आचार्यो ने उदाहरण अलकार को एक अलग अलकार माना है जब कि अर्वाचीन आचार्यो ने इसका उल्लेख भी नही किया है। यह आश्चर्य

है। जब कि यह सत्य है कि उदाहरण अलकार, उपमा, दृष्टान्त और अर्थान्तर न्यास मे से किसी मे भी अर्न्तभूति नही हो सकता।

६१—अत्युक्ति

जहाँ सम्पत्ति, सौन्दर्य, शौय, उदारता, सुकुमारता आदि का मिथ्या वर्णन हो।

उदाहरण—

"कह दास तुलसी जबहि प्रभु सर-चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्माड दिग्गज कमठ अहि महि सिन्धु भूधर डगमगे॥"
"भूली नही अभी मै वह दिन कल की ही तो है यह बात,
सोने की घडियाँ थी अपनी चाँदी की थी प्यारी रात।
मै जमीन पर पाँव न धरती छिलते थे मखमल पर पैर,
आँखे बिछ जाती थी पथ मे मै जब करने जाती सैर॥"

इसमे ऊपर वाले दोहे मे बल-वर्णन मे अत्युक्ति है तथा दूसरे पद मे सम्पत्ति और सौकुमाय के वर्णन मे अत्युक्ति है।

इसे अँग्रेजी मे (Exaggeration) कहते है।

६२—लोकोक्ति

जहाँ किसी लोक-प्रसिद्ध कहावत का अविकल रूप से प्रयोग हो। यह लोकोक्तियाँ शुद्ध, परिष्कृत, अनुकृत, अनुवादित और उद्धृत रूप मे प्रयुक्त होती है।

उदाहरण—

(१) "मुसकाई मिथिलेशनंदिनी प्रथम देवरानी फिर सौत,
अंगीकृत है मुझे किन्तु तुम नही माँगना मेरी मौत।
मुझे नित्य दर्शन भर इनके तुम करते रहने देना,
कहते हैं इसको ही अँगुली पकड प्रकोष्ठ पकड़ लेना॥"

(२) "कर्म प्रधान विश्व कर राखा,
जो जस करै सो तस फल चाखा।"

(३) "वृथा मरहु जनि गाल बजाई। मन मोदकनि कि भूख बुझाई ॥"

अंग्रेजी मे इसे (Idiom) कहते है।

६३—छेकोक्ति

'छेक' का अर्थ है चतुर। जहाँ लोकोक्ति अथवा प्रचलित कहावत का प्रयोग साभिप्राय हो अर्थात् पहले कोई बात कहके उपमान के रूप मे लोकोक्ति का प्रयोग हो वहाँ छेकोक्ति अलङ्कार होगा।

उदाहरण—

(१) "मोसो क्या पूछत अरी। बार-बार तुम खोज।
जानतु है जु भुजग ही भुवि भुजग को खोज।"

सीता जी से निशाचरियाँ अब हनुमान जी के विषय मे पूछती है तो उत्तरार्द्ध मे कही हुई लोकोक्ति मे यह अर्थ गर्भित है कि तुम्हारी राक्षसी माया को तुम राक्षस ही जान सकते हो।

(२) "सत्य सराहि कह्यो बर देना। जानेहु लेइहि माँग चबेना ॥"

यह अलकार बहुत कुछ लोकोक्ति के ही आधार पर समधारित है।

६४—पर्यायोक्ति

जहाँ अभीष्टार्थ या इष्ट भाव सीधे सादे एव साधारण रूप मे न कहा जाकर घुमा-फिरा कर किसी बहाने से अथवा दूसरे प्रकार से व्यक्त किया जावे।

उदाहरण—

(१) "नाथ ! लखन पुर देखन चहहीं। प्रभु संकोच डर प्रगट न कहहीं।
जो राउर अनुशासन पाऊँ। नगर दिखाय तूरत लै आऊँ ॥"

यहाँ रामचन्द्र की स्वय इच्छा जनकपुर देखने की है किन्तु लक्ष्मण की इच्छा का बहाना कर आज्ञा माँगते हैं।

(२) "राधे आओ कान मे, सुनौ मातु सन्देश।
कह 'रसाल' यो हरि लियो, चूमि कपोल प्रदेश ॥"

(३) "राधे ! भली न या हँसी. लीन्हो गेद दुराय।
देहु-देहु कहि कंचुकी, गही बिहँसि हरि आय ॥"

इस अलकार को अंग्रेजी मे Periphrasis कहते हैं।

६५—भाविक

जहाँ भूत एवं भविष्यकालीन बातो का वर्णन वर्तमान एव प्रत्यक्ष की भाँति किया जावे।

उदाहरण—

(१) "जाकी छवि को देखि कै होत मनहि बिसराम।
चित्रकूट मे जानिये, अबहूँ राजत राम॥"

(२) "अवलोकते ही हरि सहित अपने समक्ष उन्हें खडे,
फिर धर्मराज विषाद से विचलित उसी क्षण हो गये।
वे यत्न से रोके हुए शोकाश्रु फिर गिरने लगे,
फिर दुःख के वे दृश्य उनकी दृष्टि मे फिरने लगे।"

अर्जुन और श्रीकृष्ण को सामने देख कर युधिष्ठिर के मृतक अभिमन्यु के भूतकालिक दुःख का पुन वर्तमान काल मे स्मरण वर्णन किया गया है।

(३) "अरे मधुर है कष्टपूर्ण भी जीवन की बीती घड़ियाँ,
जब नि संबल होकर कोई जोड़ रहा बिखरी कड़ियाँ।"

६६—अनन्वय

जब उपमेय का कोई उपमान न होने के कारण उपमेय को ही उपमान बना दिया जाय।

उदाहरण—

(१) "सुन्दर नन्द किशोर से सुन्दर नन्द किशोर।"

यहाँ पर नन्दकिशोर की नन्दकिशोर से ही उपमा दी गई है।

(२) "राम से राम, सिया सी सिया,
सिरमौर बिरंचि विचार सँवारे।"

(३) "उस काल दोनो मे परस्पर युद्ध वह ऐसा हुआ,
है योग्य कहना यही अद्भुत वही ऐसा हुआ।"

६७—उपमेयोपमा

जहाँ उपमेय और उपमान एक दूसरे के उत्कर्ष के लिए परस्पर उपमान और उपमेय हो अर्थात् जहाँ उपमेय के लिए केवल एक ही उपमान हो, तीसरी सदृश का अभाव हो।

उदाहरण—

(१) "सुधा सन्त के बैन सम, बैन सुधा सम जान।
बैन खलन के विषहिं से, विष खल बैन समान॥"

(२) "दो सिंहो का मनो अचानक हुआ समागम।
राक्षस से था न्यून न कपि या, कपि से था वह कम॥"

(३) "अवधपुरी अमरावति सी,
अमरावति अवधपुरी सी विराजै।"

. उभयालङ्कार या सम्मिलित अलङ्कार

जहाँ दो अथवा दो से अधिक अलङ्कारो का मिश्रण होता है वहाँ उभयालङ्कार होता है। यह दो प्रकार के होते है :—(१) संसृष्टि, (२) संकर।

१—संसृष्टि

जहाँ दो अलङ्कार तिलतन्दुलवत मिले हुए हो अर्थात् जैसे तिल और चावल मिला देने पर भी अपने-अपने रंग के कारण प्रत्यक्ष पृथक्-पृथक् दिखाई पडते है उसी प्रकार संसृष्टि मे भी दो अलङ्कार मिश्रित होने पर भी पृथक् दिखाई पडे। यह तीन प्रकार के होते है —
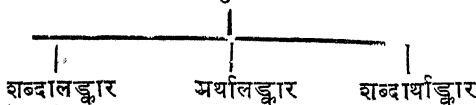
(क) शब्दालङ्कार संसृष्टि—जहाँ दो से अधिक शब्दालङ्कार एक ही छन्द मे तिलतन्दुलवत मिले हुए हो।

उदाहरण—

(१) "मर मिटे रण मे पर राम के हम न दे सकते जनकात्मजा।
सुन कपें जग में बस बीर के सुयश का रण कारण मुख्य है॥"

इसके पहले चरण मे 'र' और 'म' की आवृत्ति से वृत्यानुप्रास है तथा चौथे चरण मे यमक है।

(२) "कलकल रूप मे है वंशी रव गूँज रहा,
जा के सुनो कलित कलिंदजा के कूल मे।"

इसमे छेकानुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश और वृत्यानुप्रास है।

(ख) अर्थालङ्कार ससृष्टि—जहाँ दो या दो से अधिक अर्थालङ्कारो का एक ही छन्द मे आवृत्ति हो।

उदाहरण—

(१) "सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह,
छाँह सी अम्बरपथ से चली।"

इसमे 'छाँह सी' मे उपमा और 'नीरवता के कन्धे पर' तथा 'अम्बरपथ' मे रूपक अलङ्कार है।

(२) "नील सरोरुह स्याम, तरन अरुन बारिज नयन।
करो सो मम उर धाम, सदा छीर सागर सयन॥"

प्रथम दो चरण मे लुप्तोपमा और चौथे चरण मे पर्यायोक्ति अलङ्कार है।

(ग) शब्दार्थालङ्कार संसृष्टि—जहाँ शब्दालङ्कार एव अर्थालङ्कार दोनो ही निरपेक्ष रूप मे एकत्र होकर स्थित हो।

उदाहरण—

(१) "लसत मंजु मुनि मडली, मध्य सीय रघुनन्द।
ज्ञानसभा जनु तनु धरे, भक्ति सच्चिदानन्द॥"

प्रथम चरण मे 'म' अक्षर का अनुप्रास है तथा 'जनु' शब्द से 'उत्प्रेक्षा' प्रगट होता है।

(२) "जीवन प्रात समीरण सा लघु विचरण निरत करो।
तरु तोरण तृण-तृण की कविता छवि-मधु सुरभि भरो॥"

प्रथम चरण मे उपमा तथा 'त, र, ण' अक्षरो का अनुप्रास है तथा 'छवि-मधु' मे रूपक भी है।

२—सकर

जिस प्रकार दूध और पानी जब आपस मे मिल जाते है तो पृथक् नही किये जा सकते उसी प्रकार नीर-क्षीर क समान जहॉ अलङ्कारो का मिश्रण होता है वहॉ सकर उभयालङ्कार होता है।

इसके चार भेद होते है —
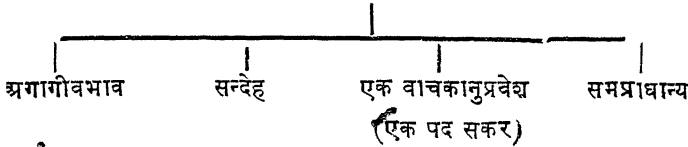
(क) अंगागीभाव सकर—जैसे बिना बीज के वृक्ष और बिना वृक्ष के बीज नही हो सकता और वे दोनो एक दूसरे पर आश्रित रहते है, वैसे ही जहाँ दो या दो से अधिक अलङ्कार अन्योन्याश्रित होते है वहाँ अगागीभाव सकर होता है।

उदाहरण—

(१) "करुणामय को भाता है तम के परदे से आना।
ओ नभ की दीपावलियों तुम छन भर को रुक जाना॥"

इसमे रूपक अलङ्कार है और दोनो की स्थिति एक दूसरे के बिना सम्भव नही है।

(२) "तुव अरि तियगन बन भजत लूटी सब बटमार।
अधर बिम्ब दुति गुज गुनि, हरे न मुकुता हार॥"

अर्थात् तेरे शत्रुओ की स्त्रियो को वन मे भागते समय लुटेरे भीलो ने लूट लिया परन्तु ओठो की द्युति से लाल हुए मोतियो को गुञ्जाफल समझकर मोती का हार नही लूटा। इस प्रकार ओठो के साहचर्य से मोतियो का गुञ्जाफल हो जाना तद्गुण अलङ्कार है तथा हार को गुञ्जाफल समझकर न लूटना भ्रान्ति अलङ्कार है।

(ख) सन्देह सकर—जहाँ अनेक अलङ्कारो की स्थिति के कारण किसी एक अलङ्कार का निर्णय न हो सकना सन्देह सकर अलङ्कार है।

(१) "सुनि मृदु वचन मनोहर पिय के।
लोचन नलिन भरे जल सिय के॥"

इसमे 'लोचन नलिन' उपमान अथवा रूपक, 'मनोहर पिय के' मृदु वचनो से दु:ख होना विषम अलङ्कार है, "लोचन नलिन भरे जल सिय के" के मिस सीता जी के दु:ख रूपी कारण का कथन होने से अप्रस्तुत प्रशसा है। सन्देह है कि कौन है।

(२) "काली आँखों मे कितनी यौवन के मद की लाली,
मानिक मदिरा से भर दी, किसने नीलम की प्याली।"

इसमे सन्देह है कि काली आँखो का "नीलम की प्याली" और मद की लाली का "मानिक मदिरा" रूपक अथवा लाली भरी काली आँखें मानिक मदिरा से नीलम की प्याली सी सुन्दर है, लक्ष्योपमा है।

(३) "जब शान्त मिलन सन्ध्या को हम हेम जाल पहनाते।
काली चादर के स्तर का खुलना न देखने पाते॥"

इसमे रूपकातिशयोक्ति और उल्लास दोनो ही अलङ्कार हैं, किन्तु एक का निर्णय करना सन्देहात्मक है।

(ग) एक वाचकानुप्रवेश सकर—जहाँ एक ही पद मे अनेक अलङ्कारो की स्थिति हो।

उदाहरण—

(१) "हे हरि दीन दयाल हौ, मै माँगौ सिर नाय।
तुव पद पंकज आसरे, मन मधुकर लगि जाय॥"

इसमे पद-पकज तथा मन-मधुकर मे अनुप्रास एव रूपक अलङ्कार एक ही स्थान पर स्थित है।

(२) "मन मे बसी है मूर्ति उसी मनमोहन की,
हिचके भला वे कैसे रूप-रस पान मे।"

'रूप-रस' मे छेकानुप्रास और रूपक दोनो अलङ्कार हैं।

(घ) समप्राधान्य संकर—दिन और सूर्य की भाँति जहाँ दो अलङ्कार साथ ही व्यक्त हो।

उदाहरण—

(१) "रघुपति कीरति कामिनी क्यों कह तुलसीदासु।
सरद प्रकास अकास छवि, चारु चिबुक तिल जासु॥"

इसमे 'क, स, च' का अनुप्रास, प्रतीप और रूपक एक ही साथ भासित होते हैं।

(२) "सेये सीताराम नहिं भजे न संकर गौरी।
जनम गंवायो वा दिही, परत पराई पौरी॥"

स, र, प के अनुप्रास और दृष्टान्त एक साथ ही हैं।

रस

रस क्या है ?—मनुष्य प्रकृति से सौन्दर्य-प्रिय होता है क्योकि सौन्दर्य का दर्शन कर मनुष्य आनन्द को अनुभूति करता है और सौन्दय के ही कारण अपने उद्‌गारो मे रस भर देता है। रस का तात्पर्य आनन्द है तथा आनन्द का सबध अनुभूति से है। यह अनुभूति दो रूपो मे होती है—(१) साक्षात् अथवा प्रत्यक्षानुभूति, (२) काव्य या रसानुभूति। साक्षात् अनुभूति मे मनुष्य अपने व्यक्तिगत सबधो से जोवन मे क्रोध, करुणा, घृणा, प्रेम आदि भावो की अनुभूति करता है जिसमे दो भाव मनुष्य मे जागते है, (१) सुखानुभूति (२) दु.खानुभूति। पहले मे प्रवृत्ति जागती है, दूसरे मे निवृत्ति। काव्य अथवा रसानुभूति मे काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि पढने या देखने से सुखात्मक या दुःखात्मक अनुभूति होती है किन्तु मन की स्थिति सदा एक ही सी रहती है। दानो ही स्थितियो मे मन उनके उपभोग को लालायित रहता है अतएव यह अनुभूति प्रत्यक्षानुभूति से अधिक सुसस्कृत एव परिष्कृत है। मन की इसी स्थिति के कारण यह अनुभूति 'रस' कहलाती है। अग्निपुराण[1] मे रस को काव्य का जीवन तथा आचाय विश्वनाथ ने साहित्य दपण[2] मे रस को काव्य की आत्मा कहा है। कोई रचना शब्दाडम्बर से भूषित कविता नही कहला सकती जब तक उसमे हृदय को छूने वाला चमत्कार न हो। इस प्रकार चमत्कार ही रस का प्राण या सार है।[3]

रसोत्पत्ति के सबध मे भिन्न-भिन्न आचार्यों का भिन्न-भिन्न मत है, किन्तु ४ आचार्यो का मत प्रमुख है :—(१) श्री भट्टलोल्लट (२) श्री शकुक, (३) श्री भट्टनायक (४) श्री अभिनव गुप्त।

१. "वाग्वैदग्ध्य प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवित।"—अग्निपुराण

२. "रस एवात्मा साररूपतया जीवनाधायको यस्य
तेन विना तस्य काव्यत्वाभावस्य प्रतिपादित त्वात।"—साहित्य दर्पण

३. "रसे सार चमत्कार·।"

(१) **श्री भट्टलोल्लट**—आपका मत उत्पत्तिवाद अथवा आरोपवाद अथवा अनुकार्यवाद के नाम से प्रसिद्ध है। आपके अनुसार रस का अस्तित्व अभिनेता के कार्य-कलाप, वेष भूषा, वाणी-भगिमा मे होता है। किन्तु इन अनुकार्यो से दर्शक का हृदय चमत्कृत हो उठता है, केवल मनोरजन हो जाता है, रस की स्थिति नही होती क्योकि अभिनेता तो अभिनयमात्र के लिए सभाषण करता है, वेदना का प्रदर्शन करता है, वेष-भूषा के द्वारा हँसाता-रुलाता है, स्वय रस की दशा को प्राप्त नही होता अन्यथा कला के प्रदर्शन मे असमर्थ रहेगा।

(२) **श्री शंकुक**—इनका मत अनुमितिवाद अथवा अनुमानवाद के नाम से विख्यात है। ये भरत सूत्र के दूसरे व्याख्याकार है तथा प्रथम व्याख्या का भट्टलोल्लट के सिद्धान्त का खण्डन किया है। इन्होने अभिनेता के कार्य मे रसोत्पत्ति युक्तिसगत नही माना है। इनका कथन है कि जैसे किसी स्थान पर धुआँ देख कर अग्नि का अनुमान किया जा सकता है उसी प्रकार जहाँ विभाव अनुभाव और व्यभिचारी तीनो मौजूद है वहाॅ रस का अनुमान अवश्य होता है। एक दूसरा उदाहरण है कि जैसे चित्र मे दौडते घोडे को देखकर यह अनुमान लगा लिया है कि घोडा दौड रहा है कवि उसी प्रकार अभिनेता के अनुकार्यों को दर्शक अनुकार्य मानकर रसानुभूति का अनुमान कर लेता है। यह मत भी अधिक मान्य नही हो पाता क्योकि मात्र अनुमान के आधार पर हृदय मे साधारणीकरण का भाव उत्पन्न नही हो सकता और साधारणीकरण का भाव न आने पर दर्शक या श्रोता को रसानुभूति नही हो सकती।

(३) **श्री भट्टनायक**—इनका मत मुक्तिवाद या भोगवाद के नाम से जाना जाता है। इन्होने शकुक के मत को युक्ति सगत नही माना है। इनका कथन है कि मात्र अनुमान करके आनन्दित होना व्यर्थ-सा है। इनके अनुसार दर्शक मे ही रस की स्थिति होती है। इसे समझाने के लिए उन्होने दो प्रकार की शक्तियाॅ मानी हैं।

(क) **भोजक वृत्ति**—काव्य मे वर्णित विषयो मे ऐसी शक्ति होती है जो दूसरो के द्वारा ग्रहण अथवा भोग करने योग्य होती है।

(ख) **भोगवृत्ति**—काव्य पढते या नाटक देखते समय श्रोता या पाठक

तथा दर्शक के मन मे ऐसी शक्ति जागती है जो उसे काव्य या नाटक को ग्रहण करने योग्य बना देती है।

भट्टनायक का विश्वास है कि स्थायी भाव से रस बनने तक की क्रिया मे तीन शक्तियो का हाथ रहता है—(१) अभिधा—काव्य के सामान्य और आलकारिक अर्थों का ज्ञान होता है। (२) भावकत्व—इस शक्ति द्वारा देश, काल, व्यक्तित्व आदि विशेषताएँ हट जाती है, फलस्वरूप स्थायी भाव साधारण होकर मनुष्य मात्र द्वारा भोग करने योग्य बन जाता है। (३) भोजकत्व—इस अवस्था मे पहुँचकर यह शक्ति साधारणीकृत स्थायीभाव को रस के रूप मे अनुभूति करा देता है और दर्शक, श्रोता या पाठक रस का भोग करता है। यह भोग मनुष्य मे रजोगुण और तमोगुण ो मिटाकर सतोगुण की वृद्धि करता है जिससे आनन्द की अनुभूति होती है और यही आनन्द ही रस है। यही आनन्द या रस थोडी देर के लिए मनुष्य को सासारिक बन्धनो एव चिन्ताओ से मुक्त कर अलौकिक आनन्द अथवा ब्रह्मानन्द का अनुभव करा देता है।

(४) श्री अभिनवगुप्तपादाचार्य—इनका मत अभिव्यजनावाद के नाम से विख्यात है। इनका भट्टनायक से कोई विशेष मत-वैषम्य नही है लेकिन उनकी भोजकत्व और भावकत्व वृत्ति को व्यर्थ मानते है। अभिनवगुप्त का कथन है कि अत्यन्त प्राचीन काल से व्यजना और ध्वनि नामक वृत्ति चली आ रही है जिसकी सीमा का विस्तार करने से ही काम चल जाता है। भावकत्व तो भावो का अपना गुण है ही क्योकि भरतमुनि की परिभाषा के अनुसार जो काव्यार्थ को भावना का विषय बना ले वही भाव है।[1] काव्याथ का तात्पर्य है मुख्यार्थ और यही मुख्यार्थ रस की व्यजना करता है। अभिनवगुप्त के अनुसार दर्शक या पाठक मे विभिन्न प्रकार के भाव वासना रूप मे पहले से विद्यमान रहते है।[2] केवल उन वासनाओ को उद्बुद्ध करना ही काव्य का काम होता है, अव्यक्त रूप से वे सदैव स्थित रहती है, उनकी अभिव्यक्ति ही काव्य कराता है।

१ "काव्यार्थान भावयतीति भावाः"—भरतमुनि

२. "विभावानुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिण ।
व्यक्त सतैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृत ॥"—काव्यप्रकाश

अभिनवगुप्त का सिद्धान्त ही उत्तराचार्यों द्वारा मान्य हुआ है।

रसोत्पत्ति—रस की उत्पत्ति के विषय मे लगभग सभी विद्वान एक मत हैं कि विभाव, अनुभाव और सचारी भावो के सयोग से अभिव्यक्त रति आदि स्थायी भाव रस कहलाते हैं —

"जो विभाव, अनुभाव अरु विभिचारिनी करि होय ।
थिति की पूरन वासना, सुकवि कहत रस सोय ॥"

रस के अग

विभाव	अनुभाव	सचारी भाव	स्थायी भाव

(१) विभाव—जो लोक मे या काव्य नाटकादि मे हृदय की वृत्तियो को उद्बुद्ध करते है अथवा सामग्री जो रसो को प्रदीप्त करे वह विभाव कहलाते हैं। विभाव का अर्थ है कारण, निमित्त अथवा हेतु ।[1] इसके दो भेद है—

विभाव

आलम्बन	उद्दीपन

(अ) आलम्बन विभाव—जिनका आलम्बन करके रति आदि मनोविकार उत्पन्न होते है, जिनके सहारे रस की उत्पत्ति होती है वह आलम्बन विभाव कहलाता है। आलम्बन का अर्थ है 'आश्रय'। शृगार रस मे नायक और नायिका आलम्बन है। जैसे—

"रूप की तुम एक मोहन खान।
देख तुमको प्राण खुलते फूटते मृदु गान ॥"

—अचल

(ब) उद्दीपन विभाव—उद्दीपन का अर्थ है 'बढाना'। जो रस को उद्दीप्त करे, उसकी आस्वाद योग्यता बढ़ावे वह उद्दीपन कहलाता है। जैसे—शृगार रस मे पुष्प-वाटिका, चन्द्रोदय, एकान्त स्थल के प्रेम को एक-दूसरे के प्रति उद्दीप्त करते है। पूर्णिमा की रात्रि, ऋतु, कमल, मलयानिलि, चाँदनी आदि विप्रलम्भ

१ 'विभव कारण निमित्त हेतुरिति पर्याया ।'—भरत नाट्य शास्त्र

शृ गार को बढाते है, रगमच पर विदूषक के हाव-भाव, वेश-भूषा, कार्य-कलाप' वार्तालाप हास्य को उद्दीप्त करते है। प्रत्येक रस के उद्दीपन विभाव भिन्न भिन्न होते हैं। जैसे—

"सौरभ की शीतल ज्वाला से फैला उर उर मे मधुर दाह।
आया बसन्त, भर पृथ्वी पर, स्वर्गिक सुन्दरता का प्रवाह॥"—पन्त

(२) अनुभाव—इसकी स्थिति विभाव के बाद है और स्थायी भाव का अनुभव कराने मे समर्थ होते है। जिन कार्यों द्वारा रति आदि भावो का अनुभव होता है वह अनुभाव कहलाते है। अनुभाव के अन्तर्गत शारीरिक एव मानसिक चेष्टाएँ आती है, इसीलिए अनुभाव के ४ भेद माने जाते है :—
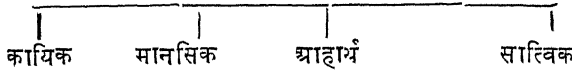
(अ) कायिक—शरीर के अग-प्रत्यगो द्वारा चेष्टाएँ करन मे जैसे भ्रू-सचालन, हस्त विक्षेप, कटाक्ष, ओष्ठ दशन आदि मे कायिक अनुभाव होता है। जैसे —

"बहुरि बदन विधु अंचल ढाँकी, पिय तन चितै भौह करि बाँकी।
खंजन मजु तिरीछे नैननि, निज पति कहेउ तिनहि सिय सैननि।"
—तुलसीदास

(ब) मानसिक—अन्त.करण वृत्ति से उत्पन्न हुए प्रमोद, विवेक, असूया, खिन्नता आदि मे यह अनुभाव होता है। जैसे—

"देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदय सराहत वचन न आवा॥"
—तुलसीदास

(स) आहार्य—कृत्रिम वेष-विन्यास मे आहार्य अनुभाव होता है। जैसे—

"काव्य पक्ष सिर सोहत नीके, गुच्छा बिच बिच कुसुम कली के।"
—तुलसीदास

(द) सात्विक—शरीर के स्वाभाविक अग विकार जो स्वत. जागृत होते हैं। जैसे—स्वेद, कम्पन, रोमाच, अश्रु आदि मे सात्विक अनुभाव होते है। ये आठ प्रकार के होते है .—

सात्विक

स्तम्भ	स्वेद	रोमाच	स्वर भग	कम्पन	विवर्णता	अश्रु	प्रलय

(क) स्तम्भ--हर्ष, भय, रोग, विस्मय, विषाद आदि से अगो का संचालन रुक जाता है। जैसे—

"मैं न कुछ कह सकी, रोक ही सकी न हाय।
उन्हे इस कार्य से, अकार्य से, विमूढ़ सी॥" —भट्ट

(ख) स्वेद—क्रोध, हर्ष, श्रम, लज्जा, दु ख, उपघात के कारण पसीना आ जाना। जैसे—

"कृशोदरी कहीं चली है, लिये है बोझा छुटी है वेजी।
निकल के बहती है चन्द्रमुख से पसीना बनकर छटा की श्रेणी॥"

(ग) रोमांच—हर्ष, श्रम, स्पर्श, क्रोध, शीत आदि से शरीर का पुलकित या रोमाचित होना। जैसे—

"अरे यह प्रथम मिलन अज्ञात, विकम्पित मृदु उर पुलकित गात।"
—पन्त

(घ) स्वर भंग—भय, हर्ष, क्रोध, मद, वृद्धावस्था, रोगादि से स्वाभाविक स्वर का बदल जाना, गदगद होना आदि। जैसे—

"कण्ठ घुटे गदगद गिरा, बोले जात न बैन।" —तुलसीदास

(च) कम्पन—शीत, भय, क्रोध, श्रम आदि के कारण शरीर मे कम्पन होना। जैसे—

"सुन कर सिंह नाद वहाँ कॉपे सब के गात।"

(छ) विवर्णता—मोह, क्रोध, भय, श्रम, शीत, ताप आदि से मुँह का रग बदलना, चिन्ता की रेखा प्रकट होना। जैसे—

"ज्यो-ज्यों निशि नियरात है, त्यो त्यो पिय पियरात।"

(ज) अश्रु—आनन्द, भय, शोक, अमर्ष के कारण आँसू उमडना, गिरना आदि। जैसे—

"उमड़ि उमड़ि बहै बरसै सु आँखिन ह्वै ।
घट मे बसी जो घटा पीतपटवारे की ॥" —पद्माकर

(झ) प्रलय—श्रम, मूर्च्छा, मद, निद्रा, मोह आदि के कारण देश, काल, लज्जा और तन का कुछ भी भान न होना, निश्चेष्ट हो जाना आदि। जैसे—

"दै चख चोट अँगोट मरा, तजी जुवति वन माँहि ।
खरी विकल कब की परी, सुधि शरीर की नाहि ॥"

(३) संचारी भाव—स्थायी भावो के बीच-बीच मे कुछ और भाव भी प्रकट होते रहते है जो कुछ क्षणो पश्चात् विलीन हो जाते हैं। इनका आविर्भाव और विलीनीकरण साधारणत मस्तिष्क मे होता रहता है। ये स्थायी भाव के सहकारी कारण है तथा सभी रसो मे यथा सभव सचार करते हैं, इसी से ये सचारी अथवा व्यभिचारी भाव के नाम से पुकारे जाते हैं। इनकी सख्या ३३ है :—

(१) निर्वेद—आपत्ति, अपमान, दारिद्र्य, ईर्ष्या के कारण अपने को कोसने या भर्त्सना करने का नाम निर्वेद है। जैसे—

"अब या तनहि राखि का कीजै ।
सुनु री सखी ! स्यामसुन्दर बिन बाँटि विषम विष पीजै ॥"
—सूरदास

(२) ग्लानि—शारीरिक कष्ट या मानसिक दुःख के कारण शरीर का कान्तिहीन होना, अगो का शिथिल होना अथवा कार्य के प्रति उत्साह का मर जाना ग्लानि है। जैसे—

"यों कहि अर्जुन अति विकल समुझि महा कुलहानि ।
बैठ्यो रथ रण विमुख ह्वै, छांडि दिये धनुबानि ॥"

(३) शका—अनिष्ट अथवा इष्ट हानि का अदेशा होना शका सचारी-भाव है। जैसे—

"हे मित्र मेरा मन न जाने हो रहा क्यों व्यस्त है ।
इस समय पल-पल मे मुझे अपशकुन करता त्रस्त है ॥"
—मैथिलीशरण गुप्त

(४) असूया—दूसरे व्यक्ति का सौभाग्य, ऐश्वर्य, उन्नति देखकर मन में जलन का पैदा होना तथा दु:ख का अनुभव कर अवज्ञापूर्ण तथा ईर्ष्यापूर्ण बात कहना, भृकुटी चढाना असूाया भाव है। जैसे :—

"खाय मुठी तिसरी अब नाथ, कहा निजवास की आस बिसारी"

(५) मद—धन, यौवन, सौन्दर्य, मद्यपान आदि के कारण से उत्पन्न हर्ष-युक्त क्षोभ। जैसे :—

"रुपमद और वित्तमद अरु जोबन मद पाइ।
ऐसे मूढ़ मद भृत नर को सकै तेहि सिखार॥"

(६) श्रम—यात्रा, जागरण, व्यायाम आदि के कारण जँभाइ, अगडाई, दीर्घश्वास लेना, काम-काज से अरुचि होना। जैसे :—

"पुर ते निकसी रघुबीर बधू, धरि-धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पट सूखि गये मधुराधर वै॥"

(७) आलस्य—जागरण, गर्भ, श्रम आदि से उत्पन्न उत्साह हीनता या कार्य शैथिल्य। जैसे :—

"दौड़ सकती थी जो न भार लिये गर्भ का।
वह धिक्कारती थी मन मे ही पति को॥"

—वियोगी

(८) दैन्य—दु:ख, दरिद्रय, मनस्ताप आदि से उत्पन्न ओजहीनता या मलिनता। जैसे :—

"सीस पगा न झगा तन में प्रभु जाने को आहि बसे केहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानह की नहिं सामा॥"

—नरोत्तमदास

(९) चिन्ता—इष्ट वस्तु की अप्राप्ति से उत्पन्न ध्यान, जैसे :—

"दृगन मूँद भौहन जुरै कर तिय राखि कपोल।
अवधि बिती आए न पिय सोचत भाई अडोल॥"

(१०) मोह—जब चित्त विक्षिप्त हो जाता है, वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं रहता, शरीर आपे के बाहर हो जाता है तब मोह होता है। जैसे :—

"मोहन मोह रह्यो कब को, कब की वह मोहन मोहि रही है"

(११) स्मृति—सादृश्य वस्तु के दर्शन एव चिन्तन से पहले की अनुभूतियो का जागना । जैसे :-

"साघन कुज छाया सुखद सीतल मन्द समीर।
मन है जात अजौ वहै वा जमुना के तीर॥"

(१२) घृति—विपत्ति पडने पर भी मन का अविचलता बनी रहना, नष्ट हो गयी वस्तु के लिये शोक न करना ही वृति है। जैसे .—

"क्यों सतापित हिय करौ भगि-भगि धनिकन द्वार।
मो सिर पर राजत सदा प्रभु श्री नन्दकुमार॥"

(१३) व्रीडा—स्त्रियो को पुरुष के देखने आदि से प्रतिज्ञा भग, पराजय अनुचित कार्य करने से जो लज्जा लगती हैं। जैसे —

"प्रथम समागम की कथा, बूझी सखिन जु आइ।
मुख नाइ सकुचाइ जिय, रही सुघूँघट नाइ॥"

(१४) चपलता—प्रेम, ईर्ष्या, द्वेष आदि के कारण चित्त का अस्थिर होना, जैसे :—

"चितवति चकित चहूँ दिसि सीता, कहँ गये नृप किसोर मनचीता"

(१५) हर्ष—इष्ट वस्तु की प्राप्ति या सुनने पर मन का आनन्दित होना, जैसे :—

"मिल गये प्रियतम हमारे मिल गये अलस जीवन सफल अब हो गया।
कौन कहता है जगत है दुखमय यह सरस संसार सुख का सिन्धु है॥"

(१६) आवेग—सुखद-दुखद घटना के कारण तथा प्रिय-अप्रिय बात के सुनने से चित्त का उत्तेजित होना या घबरा उठना, जैसे .—

"लागि-लागि आगि, भागि-भागि चले जहाँ तहाँ,
चित्रहू के कपि सों, निसाचर न लागि है॥"

(१७) जड़ता—इष्ट अथवा अनिष्ट को देखकर या सुनकर किंकर्त्तव्य विमूढ हो जाना, जैसे :—

"मम प्रिय सुत हा ! हा राम ! राम !
यह कहकर रानी हो गयी चेतहीन।
जल तजकर, जैसे खिन्न हो मीन दीन ॥"

(१८) गर्व—जैसे :—

"भीषम भयानक पुकार्‌यो रन भूमि आनि
छाई छिति छत्रिनि की गीति उठि जायगी
कहै रत्नाकर रुधिर सौं रुधैगी धारा
लोथनि पै लोथनि की भीत उठि जावेगी ॥"

(१९) विषाद—कार्य मे असफलता, असहायावस्था के कारण निरुत्साहित होना या अनुतप्त होना। जैसे :—

"सरसिज तन हा हा कण्टकों मे खिचेगा।
घृत, मधु, पय, प्याला स्वेद ही से सनेगा ॥"

(२०) उत्सुकता—जैसे :—

मानुष हौं तो वही 'रसखान'
बसौं मिलि गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौ तो कहा बस मेरो,
चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन ॥"

(२१) निद्रा—जैसे :—

"चिन्तामग्न राजा घूमता है उपवन में
होकर विदेह सा बिसार आत्मचेतना
बन्द हुयी आँखें—हुआ शिथिल शरीर भी"—वियोगी

(२२) अपस्मार—मानसिक सताप के कारण मिरगी जैसी अवस्था हो जावे। गात्र कम्पन, मुखादि से फेन बहना, पृथ्वी पर गिर पडना आदि इसके अनुभाव हैं। जैसे :—

सुनिकै आये मधुपुरी हरि जदुकुल अवतंस।
बढ़यो स्वांस भूतल परयो अति कंपित ह्वै कंस ॥"

(२३) स्वप्न—सुषुप्तावस्था मे भी मस्तिष्क का सचलन होना स्वप्न है। जैसे :—

"क्यों करि झूठो मानिये, सूखि सपने की बात।
जु हरि रह्यो सोवत हिये, सो न पाइयत प्रात॥"

(२४) विबोध:—निद्रा अथवा अविद्या के नाश के पश्चात् चेतनता पाना विबोध है। जैसे :—

"हाथ जोड़ बोला साश्रु नयन महीप यों
मातृभूमि इस तुच्छ जन को क्षमा करो
धोऊँगा कलंक रक्त देकर शरीर का" 'आर्यावर्त्त'

(२५) अमर्ष—निन्दा, अपमान, मानहानि आक्षेप आदि के कारण उत्पन्न चित्तवृत्ति अथवा असहिष्णुता अमर्ष है जिसमे नेत्रो का लाल होना, सपात, प्रतिकार, क्रूर वाक्य आदि अनुभाव हैं। जैसे :—

"सुनतहि लषण कुटिल भई भौहे, रदपट फरकत नयन रिसौ हैं"
"जौ तुम्हारि अनुसासन पाऊँ, कन्दुक इव ब्रह्माड उठाऊँ
कॉचे घट इमि डारौ फोरी, सकौ मेरु मूलक इव तोरी"

(२६) अवहित्था—आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है जिससे चित्त बहिस्थ न हो उसे अवहित्थ कहते है।[1] लज्जा, गौरव और भय आदि के कारण से उत्पन्न हर्षादिभावो को चतुराई से छिपा लेना। जैसे :—

"सुनि नारद की बात तात निकट है नमित मुख,
उमा कमल के पात कर उठाय गिनने लगी।"

(२७) उग्रता—अपमान, दूषित व्यवहार आदि के कारण उत्पन्न होने वाली निर्दयता ही उग्रता कही जाता है। इसमे बध, भर्त्सना, ताडना आदि अनुभाव हैं। अमर्ष और उग्रता मे यह अन्तर है कि अमर्ष में निर्दयता नही है, उग्रता मे हैं। जैसे दशरथ के प्रति कैकेयी इन भर्त्सनापूर्ण बचनो मे :—

भरत किरा उर पूत न होही। आनेहु मोल बेसाहि कि मोहीं॥
जो सुनि सर अस लागु तुम्हारे। काहे न बोलेहु बचन बिचारे॥

---

१. "न वहिस्थ चित्त येन" काव्यानुशासन

(२८) मति—शास्त्रादि के उपदेशो को ग्रहण कर अथवा तर्क आदि से किसी बात का निर्णय कर लेना। जैसे :—

जीभ जोग अरु भोग, जीभि बहुरोग बढावै।
जीभि स्वर्ग ले जाय, जीभि सब नरक किखावै॥

(२६) व्याधि—रोग-वियोग आदि से उत्पन्न मन का सताप। जैसे

"मानस मन्दिर में सती पति की प्रतिमा थाप।
जलती सी उस विरह में, बनी आरती आप"॥

गुप्त जी, 'साकेत'

(३०) उन्माद—काम, शोक, भय आदि से चित्त का भ्रान्त होना। जैसे :—

"छिन रोवति छिन हँसि उठति छिन बोलत छिन मौन।
छिन छिन पर छीनी परति भई दसा धौं कौन।"

(३१) त्रास—जैसे :—

" 'भूषण' भनत सिह साहि के सपूत सिवा,
तेरी धाक लेन अरि नारी बिललाती हैं।
कोऊ करै घाती कोऊ रोती पीट छाती,
घरै तीन बेर खाती ते वै तीन बेर खाती है"

(३२) वितर्क—सन्देह के कारण मन में उत्पन्न ऊहापोह। जैसे :—

'दुख का जग हूँ या सुख की पल, करुणा का धन या मरु निर्जल
जीवन क्या है मिला कहाँ सुधि भूली आज समूल' महादेवी वर्मा

(३३) मरण—मरण की व्यजना अमागलिक होने के कारण इसको मूर्च्छा की अभिव्यक्ति के रूप मे मानते हैं। 'रस गगाधर, के रचयिता पडितराज जगन्नाथ का भी यही मत है। जैसे :—

"सब सखियों से कह देना, बस सविनय यही वियोग कथा।
जीवतेश के धाम गयी वह, सह न अधिक विरह-व्यथा॥"

सचारी भावो द्वारा चित्त वृत्तियो तथा मनोभावो की व्यजना होती है, अतएव इन ३३ सचारी भावो के अतिरिक्त अन्य सचारी भाव भी हो सकते है,

जैसे—उद्वेग, मात्सर्य, दम्भ, ईर्ष्या, विवेक, निर्णय, क्षमा, उत्कण्ठा आदि। किन्तु ये सभी भाव उक्त ३३ भावो के अन्तर्गत रख लिये जाते हैं, जैसे,—दम्भ के अवहित्था ,मे मात्सर्य को असूया में, ईष्या के अमर्ष मे, क्षमा को घृति मे, इत्यादि। महाकवि देव ने 'छल' को अलग ३४ वाँ सचारी भाव माना है, किन्तु अभी वह साधारणतया मान्य नही हुआ है।

(५) स्थायी भाव

जो भाव चिरकाल तक चित्त मे स्थिर रहते है और जिन्हे विरुद्ध या सजातीय भाग छिपा या दबा नही सकते, जो आलबन उद्दीपन तथा अनुभाव आदि मिलकर रस रूप मे प्रकट हो जाते है, उन्हे स्थायी भाव कहते है। जैसे—मिट्टी के बर्तन मे सुगन्ध पहले से ही विद्यमान रहती है, लकडी से अग्नि और फूल मे सुगन्ध छिपी रहती हैं किन्तु पानी के छीटे पडने पर सोधी मँहक, रगड खाने से अग्नि-ज्वाला और खिलने पर, तथा वायु के झकोरे से सुगन्ध समक्ष आता है वैसे ही चित्त में स्थायी भाव सदैव बना रहता है। अनुकूल विभावादि से सम्बन्ध स्थापित होने पर स्थायी भाव विकसित होता है तथा सचारी भाव की सहायता से रस की अवस्था को प्राप्त होता है। इस प्रकार स्थायी भाव की ४ विशेषताएँ हैं :—

(१) अन्य भाव इसमें स्वतः विलीन हो जाते है।

(२) सजातीय तथा विरोधी भावो से नष्ट नही होता।

(३) आस्वाद का मूलभूत होकर विद्यमान रहता है।

(४) विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावो से परिपुष्ट होकर रस रूप ग्रहण करता है।

आचार्यों ने सिद्ध किया है कि मनुष्य के चित्त मे सदैव स्थिर रहने वाले नौ स्थायी भाव हैं।
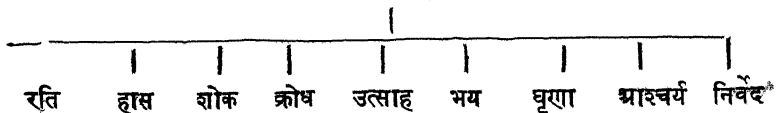
(१) रति—इसका अर्थ है प्रणय, अनुराग, प्रीति। जैसे :—

हृदय की कहने न पाती, उमग उठती बैठ जाती।
मैं रही हूँ दूर जिनसे वह बुलाते पास क्यों? महादेवी

(२) हास—वचन, अग, कार्य, रूप की विकृतता एव विचित्रता से उल्लास या हँसी आना। जैसे :—

मक्खन, मलाई, दूध, घृत का विचार त्याग।
खोल मधुशाला एक साथी रख लीजिये॥
शख चक्र गदा पद्म छोड़ चारो हाथ बीच।
घड़ी छड़ी हैट और हाँकी रख लीजिये॥ चोच

(३) शोक—अनिष्ट होने पर दु:ख की उत्पत्ति, जैसे :—

किस विधि झेलूँ दु:ख आलि कैसे घटेगी।
यहाँ अवधि बड़ी है हाय कैसे कटेगी॥

(४) क्रोध—विवाद एव अपमानादि से उत्पन्न चित्त विकार। जैसे :—

उठ वीरो की भाव रागिनी, दलितों के दल की चिनगारी।
युग मर्दित यौवन की ज्वाला, जाग जागरी क्रान्तिकुमारी॥

—दिनकर

(५) उत्साह—कार्य करने मे आवेश तथा शौर्य-प्रदर्शन की प्रबल इच्छा। जैसे :—

यदि रोकें रघुनाथ न तो मै अभिनव दृश्य दिखाऊँ।
क्या है चाप सहित शकर के मैं कैलाश उठाऊँ।

—रामचरित उपाध्याय

(६) भय—हिंसक जीवो या प्रबल शत्रु आदि को देखकर डर जाना जैसे :—

सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले वाहन सब भागे।
धर धीरज तहँ रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने॥

(७) घृणा—घृणित वस्तु को देखकर या सुनकर नफरत का पैदा होना जुगुप्सा या घृणा है। जैसे :—

मल रुधिर राध मल थैली । की कस वसादिते मैली ।
नवद्वार बहे घिनकारी। अस देह करे किमि यारी ।।

(८) आश्चर्य—अलौकिक एव अघटित घटना या वस्तु को देखकर ताज्जुब मे पड जाना —

"सुर नर सब सचकित रहे पारथ कौ रन देखि"

(९) निर्वेद—नित्य और अनित्य वस्तु के विचार से तत्व ज्ञान के द्वारा वीतरागता या वैराग्य का जागना । जैसे —

सबहि सुलभ नित विषय सुख क्यो तू करत प्रयास ।
दुर्लभ यह नर तन समुझि, करहु न वृथा निवास ।।

यही उपर्युक्त चित्त मे सदैव स्थिर नवो भाव, विभाव, अनुभाव एव सचारी भावो का परिपाक या स्थायी भाव नौ रस में परिणत हो जाते हैं —
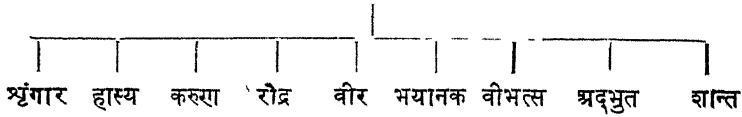
(१) शृगार रस

परिभाषा—'शृग' तथा 'आर' दो शब्दो से बना है शृङ्गार, जिसका अर्थ है कामोद्रेक । 'ऋ' धातु से 'आर' शब्द बना है, अर्थ है गमन' । 'गमन' का अर्थ यहाँ पर 'प्राप्ति' है, अतः शृङ्गार का तात्पर्य है "काम-वृद्धि की प्राप्ति ।" इसके दो भेद हैं —
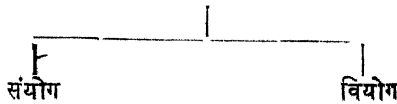
(अ) संयोग शृगार—इसे सयोग शृङ्गार भी कहते है । नायक-नायिका के पारस्परिक आलिगन अवलोकन सभाषण एव सामीप्य मिलन का अनुभव

करते हैं वहाँ 'सयोग श्रृङ्गार' होता है। इसमे निम्नलिखित तत्वो का होना आवश्यक है :—

आलम्बन—नायक-नायिका।

उद्दीपन—निर्जन स्थान, एकान्त, वसन्त ऋतु, नदी-तट, चाँदनी, संगीत तथा शारीरिक और प्राकृतिक दृश्य।

अनुभाव—एक-दूसरे को प्रेम से देखना, मुस्कराना, स्पर्श करना, रति सूचक आगिक चेष्टाएँ।

स्थायी भाव—रति।

संचारी भाव—हर्ष, लज्जा, क्रीडा, औत्सुक्य, श्रम, गर्व।

गुण—माधुर्य, प्रसाद।

रीति—वेदर्भी, पाचाली।

जैसे :—

संयोग श्रृङ्गार के उदाहरण—

(१) "छुटै न लाज न लालचौ प्यौ लखि नैहर गेह।
सटपटात लोचन खरे, भरे सकोच सनेह॥"

(२) "छिनकु चलति ठठुकति छिनकु, भुज प्रीतम गल डारि।
चढी अटा देखति घटा, विज्जु छटा सी नारि॥"

(३) "लखि दौरत पिय कर कटक, वास छुडावन काज।
बरुनि बन दृग गढ़नि मे रही गुढ़ौ करि लाज॥"

(४) "कंचुकी के बिन ही मृगलोचनि। सोहत तू अति ही मनभावन।
प्रीतम या कहिकै हँसिकै अपने कर ते लगे बंध छुटावन।
सस्मित बक विलोकन कै ढिग देखि अलीन लगी सकुचावन।
लै मिस झूठी बना बतियाँ सखियाँ सनकै जु लगीं उठि धावन।"

इन उपर्युक्त पक्तियो में नायिका आलम्बन, अग शोभा, उद्दीपन, कचुकी खोलने की चेष्टा अनुभाव और उत्कठा आदि व्यभिचारी भाव हैं।

(ब) **वियोग श्रृंगार**—जब नायक-नायिका मे उत्कृट प्रेम होने पर भी समागम न हो अथवा मिलकर विछोह हो जावे, तो उसे 'वियोग अथवा विप्रलम्भ

शृंगार' कहते है। इसके ५ भेद है :—(१) पूर्वानुराग अथवा अभिलाषा हेतुक, (२) मान अथवा ईर्ष्या हेतुक, (३) प्रवास, (४) करुण, (५) विरह।

(१) पूर्वानुराग—मिलन से पूर्व गुण-श्रवण, चित्र-दर्शन, स्वप्न-दर्शन और प्रत्यक्ष-दर्शन से जो अनुराग उत्पन्न हो। जैसे :—

साँवरो सो ढोटा एक ठाढ़ौ तीर जमुना के,
मो तन निहार्‌यो नीर भरी अँखियान दै।
वा दिन ते मेरी ही दसा को कुछ बूझै मति,
चाहे जो जिवार्यो मोहि वाहि रूप दान दै।

(२) मान—मिलन के पश्चात् रूठने से जो वियोग होता है, उसे मान कहते है। जैसे :—

सुरग महावर सौत पग निरखि रही अनखाय।
पिय अगुरिन लाली लसै, खरी उठी लगि लाय॥

वियोग शृंगार मे मान दो प्रकार का होता है —

(क) प्रणयमान—इसके अन्तर्गत प्रेमी-प्रेमिका के बीच रुष्ट होने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। जैसे :—

कहा लेहुगे खेल मे तजौ अटपटी बात।
नैकु हँसोही हैंभई भौहै सौहै खात॥

(ख) ईर्ष्यामान—नायक मे अन्य स्त्री के प्रति प्रेम उत्पन्न होने पर अथवा सम्बन्ध की शका पर भी नायिका मे जो रोष उत्पन्न होता है। जैसे :—

(१) सदन-सदन के फिरन की सदन फिरै हरिराय।
रुचै तितै बिहरत फिरौ कत बिहरत दुर आय॥
(२) मोहू सी बातनि लगे, लगी जीह जिहिं नायँ।
साईं लै उर लाइये, लाल लागियत पायँ॥

(३) प्रवास—मिलन के पश्चात् नायक के परदेश-गमन अथवा विदेश-प्रवास से जो वियोग उत्पन्न होता है। इस वियोग के तीन भेद भूत, वर्तमान और भविष्य तथा तीन कारण शाप, भय और कार्य है। जैसे :—

(१) "ललन चलन सुनि चुपि रही बोली आपन ईठि।
राख्यो गहि गाढे गरे मनो गलगुली डीठि ॥"

—बिहारी

(२) "बामा, भामा, कामिनी, कहि बोलो प्राणेश।
प्यारी कहत लजात नहि, पावस चलत विदेस।"

(४) करुण—जब नायक-नायिका की मृत्यु अथवा मिलन की असभाविता पर रति की प्रतीति होती है, तब करुण विप्रलम्भ होता है। जैसे :—

"ऊधौ कहौ सूधौ सो सनेस पहिलै तौ यह,
प्यारे परदेस तै कधौ पग पारिहैं।
कहै रत्नाकर बिहारी परि बातन मे,
मीडि हम कबलौ करे जौ मन मारिहैं।"

(५) विरह—प्रियतम के वियोग मे प्रियतमा के हृदय में उसके मिलन की जो तडपन उत्पन्न होती है, उसे विरह कहते है। जैसे :—

(१) दुसह बिरह दारून दसा, रह्यो न और उपाय।
जात जात जिय राखिये, पिय की बात सुनाय॥

(२) कहे जु बचन वियोगिनी, विरह विकल बिललाय।
किये न कोहि अँसुवा सहित, सुवा सुबोलि सुनाय॥

विप्रलम्भ शृगार में निम्नलिखित तत्वो की आवश्यकता होती है :—

(१) आलम्बन—नायक-नायिका।

(२) उद्दीपन—चाँदनी, कमल, कोकिल, चकवा, चकवी, गुण, श्रवण, चित्र दर्शन आदि, तथा सयोग पक्ष के उद्दीपन, इसके भी उद्दीपन विभाग होते हैं, किन्तु वे विरुद्ध प्रभाव डालते हैं।

(३) अनुभाव—अश्रुपात, उन्माद, प्रलाप आदि।

(४) स्थायी भाव—प्रेम या रति।

(५) संचारी भाव—मरण, विषाद, चिन्ता, उत्कठा, दैन्य स्वप्न, अपस्मार।

(६) गुण—माधुर्य और प्रसाद।

(७) वृत्ति—वैदर्भी और पाचाली।

उदाहरण—

(१) साँझ न सुहात, ना सुहात दिन माँझ कछू।
व्यापी यह बात सो बखानत हौ तोही सौं॥
राति न सुहात ना सुहात परभात आली।
जब मन लगि जाति काहू निरमोही सों॥

—पद्माकर

(२) नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण मे वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर मे छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ,
दूर तुमसे हूँ, अखड सुहागिनी भी हूँ।

—महादेवी वर्मा

विप्रलम्भ के अन्तर्गत वियोग की १० दशायें मानी गई हैं।

(१) अभिलाषा—आते अपने कमल कर से मेरा अक मिटा देते।
आते मेरे घट का जीवन हाथों से ढरका देते॥

(२) चिन्ता—कुंजन मे मै गयी मिलन तापस कीन्हों योग।
धुनि रमाई प्रिय मिलन अर्थ तऊ न भयो संयोग।

(३) स्मरण—बिछुरे पिय के जग सूनो भयो।
अब का करिये कहि पेखिए का।
सुख छाड़िकै संगम को तुम्हरे।
इन तुच्छन को अब लेखिए का॥

(४) उद्वेग—दुःख के दिन को कोऊ भाँति बितै।
बिरहागम रैन सँजोवती है॥

हम ही अपुनी दशा जानै सखी ।
निसि सोवती है किधौं रोवती है ।

(५) गुणकथन—"हरिचन्द जू हीरनै को व्यवहार कै ।
काँचन को लै परेखिये का ।
जिन आँखिन मे तुव रूप बस्यो ।
उन आँखिन सों अब देखिए का ॥"

(६) प्रलाप—ग्वाल उडुगन बीच बेनु को बजाइ सुधा ।
रस बरसाइ मान कमल लजा दयो ।
गोरज-समूह घन पटल उघारि वह ।
गोप कुल कुमुद निसाकर उदै भयो ।

(७) व्याधि— हरिचन्द भये निरमोही इतै निज ।
नेह को यो परिनाम कियो ।
मन माँहि जो तोरन ही की हुती ।
अपनाइकै क्यों बदनाम कियो ॥

(८) जड़ता—हिलै दुहूँ न चलै दुहूँ दुहुँन बिसरिगे गेह ।
इकटक दुहुनि दुहूँ लखै, अटकि अटपटे नेह ॥

(९) उन्माद—अहो जमुना अहो खग मृग हो अहो गोवरधन गिरि ।
तुम देखे कहुँ प्रान पियारे मनमोहन हरि ॥

(१०) मरण—देख्यौ एक बार हूँ न नैन भरि तोहि याते ।
जौन जौन लोक जैहै तहीं पछितायँगी ।
बिन प्रान प्यारे भये दरस तुम्हारे हाय ।
देखि लीजौ आँखें ये खुली ही रह जायँगी ॥

(२) हास्य रस

परिभाषा—विकृत आकृति, वेश-भूषा अथवा वाणी बोलने वाले व्यक्ति या क्रिया-कलाप के कारण जो हँसी पैदा होती है । हास्य का सम्बन्ध मानसिक क्रिया से है । आचार्य भरत मुनि हास्य की उत्पत्ति शृङ्गार से मानते हैं,[१] किन्तु उसके

(१) श्रृगाराद्धिभवेद्धास्यः—भर सूत्र

विस्तृत सीमा क्षेत्र को देखते हुए उसे मात्र-शृङ्गार तक सीमित नही किया जा सकता। इसके दो भेद हैं[२] :—

उदाहरण :—

(१)

हाथ अपने आप जाता है उधर—
खीचता जिस भाँति चुम्बक जोर से
आ गया लोहा निकट उसके अगर
बैठ जाता हाथ तब तत्काल है
जिस तरह सम पर ध्रुपद का ताल है।
बाल इनका कौन बाँका कर सके
धर पकड़ मे भी न आ सकते कभी—
और चुन्दीं कौन बेढब धर सके।
फिसलती है धूल अब इस चाँद पर
बाल छिपते जा रहे हैं कान पर।

—बेढब बनारसी

कविता का अनुकरण (Parody) भी हास्य के अन्तर्गत रखा जाने लगा है जैसे :—

(२)

घन घमड नभ गरजत घोरा।
टका हीन कलपत मन मोरा॥
दामिनि दमक रही घन माँही।
जिमि लीडर की मति थिर नाहीं॥

—ईश्वरी प्रसाद शर्मा

(अ) आत्मस्थ—हास्य के विषय को देखने मात्र से जो हँसी उत्पन्न हो।

(ब) परस्थ—दूसरे को हँसता हुआ देखकर हँसी आ जाना।

---

(२) आलस्यो द्रष्टुरुत्पन्नौं विभावेक्षणमात्रतः।
हसन्तमपरं दृष्टवा विभावश्चोपजायते। योऽसौ हास्यरस. तज्ज्ञ. परस्थः परकीर्तित :—

—रस गंगाधर

(१) **आलम्बन**—प्रिय व्यक्ति या वस्तु का विनाश, पराभव, मृतक या दरिद्र व्यक्ति आदि।

(२) **उद्दीपन**—रुदन, चीत्कार, मृतकदाह, प्रिय के प्रेम, यश, गुण का स्मरण या चित्रावलोकन आदि।

(३) **अनुभाव**—विलाप, मूर्च्छा, उच्छ्वास, प्रलाप, जडता, पीला पडना, कम्प, भूमि पतन, सिर फोडना आदि।

(४) **स्थायी भाव**—शोक।

(५) **सचारी भाव**—मोह अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, दैन्य, चिन्ता, विषाद, उन्माद, श्रम, निवेद आदि।

(६) **रीति**—वैदर्भी।

(७) **गुण**—माधुर्य।

उदाहरण—

(१) "प्रिय पति वह मेरा प्राण-प्यारा कहाँ है ?
दु.ख जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है ?
लख मुख जिसका आज लौं जी सकी हूँ।
वह हृदय हमारा नैन तारा कहाँ है ?" हरिऔधजी

(२) "रोवहु सब मिलकै आवहु भारत भाई।
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।" भारतेन्दु

(३) कौरवों का श्राद्ध करने के लिए,
या कि रोने को चिता के सामने।
शेष अब है रह गया कोई नहीं,
एक वृद्धा एक अन्धे के सिवा ।।

—दिनकर

(४) रौद्र रस

शत्रु, शत्रु के पक्ष वाले, किसी अविनीत की कृतियो, चेष्टाओ, असाधारण अपराध, अपमान, अपकार या गुरुजनो की निन्दा के कारण उत्पन्न क्रोध से रौद्र रस का सचार होता है।

(१) आलम्बन—अनिष्ट करने वाला पुरुष, शत्रु या उसके पक्ष वाले धृष्ट व्यक्ति, देश-द्रोही, कपटी, दुराचारी आदि।

(२) उद्दीपन—आक्रमण, अविक्षेप, कठोर वाक्यों का प्रयोग, क्रोध को भड़का देने वाली वस्तुएँ गर्वोक्तियाँ, चालबाजियाँ आदि ।

(३) अनुभाव—आँख-मुंह लाल होना, भृकुटि चढाना, दाँत पीसना, गरजना, ताडना, ताडना, शस्त्र उठाना, कम्प होना, क्रूर दृष्टि, आवेग, मद, कठोर, कटु भाषण आदि ।

(४) स्थायी भाव—क्रोध ।

(५) संचारी भाव—उग्रता, अमर्ग, वैर्य, मद, आवेग, गर्व स्मृति, क्रूरता ।

(६) गुण—ओज ।

(७) रीति और वृत्ति—गौडी, परुषा ।

उदाहरण—

(१)
मिट जाय समस्त महीतल क्योंकि,
किसी ने किया अपमान किसी का ।
जगती जल जाय कि छूट रहा है,
किसी पर दाहक बाण किसी का ।
सबके अभिमान उठें बल क्योंकि,
लगा बलने अभिमान किसी का ।
नर हो बलि के पशु दौड़ पड़े,
कि उठ बजे युद्ध विषाण किसी का ।

—कुरुक्षेत्र

(२)
माथे लखन कुटिल भइ भौंहे ।
रद पट फरकत नैन रिसौंहैं ।।

(३)
सूर्यास्त से पहले न जो मैं कल जयद्रथ बध करूँ ।
लो सपथ करता हूँ स्वय मैं ही अनल मे जल मरूँ ।।

सुनत लखन के वचन कठोरा । परसु सुधार धरेऊ कर घोरा ।
अब जनि देउ दोष मोहि लोगू । कटु वादी बालक बध जोगू ।।

—तुलसीदास

(५) वीर रस

प्रताप, विषय, अध्यवसाय, सत्व, अविषाद, विस्मय, विक्रम आदि विभावो से उत्साह स्थायी तथा परिपाक होने पर वीर रस होता है ।

(१) आलम्बन—तीर्थ, याचक, शत्रु, दीन, धर्मनिष्ठा आदि ।

(२) उद्दीपन—शखनाद, याचक की दीनदशा, शत्रु का पराक्रम, युद्ध की ललकार और मारु वाद्यो का बजना ।

(३) अनुभाव—भृकुटि चढाना, सैन्य-सचालन, अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग, आदर-सत्कार, रोमाच, गर्वीली वाणी आदि ।

(४) स्थायी—उत्साह

(५) सचारी भाव-गर्व, धृति, उत्सुकता, आवेश, श्रम, हर्ष, मरण आदि ।

(६) गुण—ओज और प्रसाद ।

(७) रीति तथा वृत्ति—गौडी, पाचाली, परुषा, कोमला । रस-गगाधर और साहित्य-दर्पण में इसके चार भेद किये गये हैं :—

(अ) युद्धवीर, (ब) दानवीर, (स) धर्मवीर, (द) दयावीर ।

उदाहरण—

दान समै द्विज देखि मेरहू कुबेरहू की,
सम्पत्ति लुटाइबे को हियौ ललकत है ।
साहि के सपूत सिव साहि के बदन पर,
शिव के कथान मे सनेह झलकत है ।
भूषन जहान हिन्दुवान के उबारिबे को,
तुरकान मारिबे को वीर बलकत हैं ।
साहिन सो लरिबे की चरचा चलत आनि,
सरजा के दृगनि उछाह झलकत हैं ।

भूषण की उपर्युक्त रचना मे वीररस के चारो अगो का बड़ा ही सुन्दर समावेश है । प्रथम दो पंक्तियो मे दानवीर, द्वितीय दो पक्तियों में दया-वीर, तृतीय दो पक्तियो मे धर्मवीर और अन्तिम दो पक्तियो में युद्धवीर का वर्णन है ।

(अ) युद्धवीर—

(१) आलम्बन—शत्रु ।

(२) उद्दीपन—शत्रु का पराक्रम, उत्पीडन ।

(३) संचारी—धृति, गर्व, तर्क ।

(४) अनुभाव—गर्वोक्ति करना, भुजाओ को फडकना, मुट्ठी बँध जाना, रोमाच होना ।

उदाहरण—

साजि चतुरंग वीर रग में तुरंग चढ़ि
सरजा सिवाजी जग जीतन चलत हैं।
भूषन भनत नाद बिहद नगारन को
नदी नद मद गैवरन के रलत हैं ॥
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल गैल
गजन की ठैल पैल सैल उलसत हैं ।
तारा सो तरिन धूरि धारा पर लगत जिमि
धारा पर पारा पारावार यों हलत हैं ॥

(ब) दानवीर—

(१) आलम्बन—याचक, पर्व और दानयोग्य पदार्थ ।

(२) उद्दीपन—दाताओ के दान, याचक के मुख से प्रशसा ।

(३) संचारी—हर्ष, गर्व आदि ।

(४) अनुभाव—याचक का आदर सत्कार, मुख पर आनन्द और सन्तोष की झलक ।

उदाहरण—

(१) "जो सम्पति शिव रावनहि दीन दियें दस माथ ।
सो सम्पदा विभीखनहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ ॥" तुलसीदास

(२) "मैं जगदेव पमार प्रसिद्ध सराहित जाहि ससी अंसुमाली ।
सीस की मेरे कहा गिनती जिय राजी रहै कलि में जो कंकाली ॥"

(३) "आँसू से पद को धोकर धीमे-धीमे वह बोला,
'यह मेरी सेवा,' कह कर थैलों के मुँह को खोला।
खन खन खन मणि मुद्रा की मुक्ता की राशि लगा दी,
रत्नों की ध्वनि से वन की नीरवता सकल भगा दी।"

(स) धर्मवीर—

(१) आलम्बन—धार्मिक ग्रन्थ, उपदेश, तीर्थ स्थान।
(२) उद्दीपन—धार्मिक बाते, उपदेशो में धर्म व फल की प्रशसा।
(३) सचारी—धृति और स्मृति।
(४) अनुभाव—धर्माचरण और धर्म के लिए कष्ट सहना।

उदाहरण—

(१) "और जे टेक धरी मन माँहि न छाँडि हौ कोऊ करो बहुतेरौ।
धाक यही है युधिष्ठिर की धनधाम तजौ पै न बोल न फेरौ॥"
(२) "जलकर अनल में दूसरा प्रण पालता हूँ मै अभी।
अच्युत युधिष्ठिर आदि का अब भार है तुम पर सभी॥"
(३) वश पुरोहित का प्रताप ने, दाह कर्म करवा डाला।
देकर धन ब्राह्मण कुल के, खाली घर को भरवा डाला॥
जहाँ लाश थी ब्राह्मण की जिस जगह त्याग दिखलाया था।
चबूतरा बन गया जहाँ प्राणों का पुष्प चढ़ाया था॥"

(द) दयावीर—

(१) आलम्बन—दयनीय व्यक्ति।
(२) उद्दीपन—दीनदशा।
(३) अनुभाव—दयापात्र से सान्त्वना के शब्द।
(४) सचारी—धृति और हर्ष आदि।

उदाहरण—

(१) दीनदयाल है छत्रि को धर्म तहूँ सिवि हौ जग व्याधि नसाऊँ।
तू जनि सोचै कपोत के पोतक अपनी देह दै तोहि बचाऊँ॥

(२) को अस दीनदयाल भयो दसरथ के लाल से सूधे सुभायन।
दौरे गयन्द उबारिये को प्रभुवाहन छाँडि उपाहने पायन ॥

(६) भयानक रस

भयप्रद वस्तु को देखने-सुनने से अथवा प्रबल शत्रु के विद्रोह आदि करने से हृदय मे भय का सचार होता है, तो भयानक रस की सृष्टि होती है।

(१) स्थायी भाव—भय।

(२) आलम्बन—शत्रु, श्मशान, भूत-प्रेत की आशका, बीहड या निर्जन स्थान, बाघ, साँप आदि हिंसक जीव, चोर, डाकू, बलवान शत्रु आदि।

(३) उद्दीपन—निस्सहायता, शत्रु आदि की भयकर चेष्टाएँ भयानक दृश्य, नीरवता।

(४) अनुभाव—रोमाँच, स्वेद कम्पन, चिल्लाना, रोना, घिग्घी बँध जाना, स्वरभग, वैवर्ण्य, पलायन, मूर्छा, भौचक्का होना आदि।

(५) संचारी भाव—शका, चिन्ता, ग्लानि, जुगुप्सा, दीनता, त्रास, दैन्य, भास आदि।

(६) गुण—ओज।

(७) रीति एव वृत्ति—गौडी और परुषा।

उदाहरण—

(१) चकित चकत्ता चौकि उठे बार बार
दिल्ली दहसति चितै चाह करखति है।
बिलखि बदन बिलखात बिजैपुरपति
फिरति फिरगनि की नारी फरकति है।
थर थर काँपति कुतुबसाहि गोलकुण्डा
हहरि हबस भूप भीर भरकति है।
राजा शिवराज के नगारन की धाक सुनि
केते पादसाहन की छाती दरकति है। —भूषण

(२) एक ओर अजगरहि लखि एक ओर मृगराय।
विकल बटोही बीचहीं पर्‌यो मूरछा खाय ॥

(३) भई आनि तब साँझ घटा आई घिरि कारी।
सनै सनै सब ओर लगी बढ़नि अँधियारी॥
भये इकट्ठ आनि तहाँ डाँकनि पिचास गन।
कूदत करत कलोल किलकि दौरत तोरत तन॥
आकृति अति विकराल धरे कुइला से कारे।
वक्र बदन लघु लाल नयन जुत जीभ निकारे॥

—रत्नाकर

(७) वीभत्स रस

रुधिर, आँत, पीब, हड्डी, चरबी, मास आदि घृणित वस्तुओ को देखने या सुनने से हृदय मे जो ग्लानि उत्पन्न होती है, उसी से वीभत्स रस उत्पन्न होता है।

(१) आलम्बन—घृणास्पद वस्तु या दृश्य।

(२) उद्दीपन—शव, मास, रक्त मे कीडे आदि का पडना और सडना दुर्गन्ध, मक्खी का भिनभिनाना आदि।

(३) अनुभाव—थूकना, नाक बन्द करना, मुँह मोडना, रोमाचित होना, छी-छी करना।

(४) सचारी भाव—आवेग, व्याधि, मूर्छा, अपस्मार आदि।

(५) स्थायी भाव—जुगुप्सा।

(६) गुण—ओज।

(७) रीति व वृत्ति—गौडी और लाटी एव परुषा।

उदाहरण—

(१) सिर पर बैठ्यो काग आँख दोउ खात निकारत।
खीचहिं जीभहि स्यार अतिहि आनन्द उर धारत॥
गिद्ध जाँघ को खोदि खोदि कै मांस उपारत।
स्वान आँगुरिन काटि काटि कै खात विदारत॥

(२) लोहू जमने से लोहित सावन की नीलम घासें,
सरदी गरमी से सड़कर बजबजा रही थी लासें।

आँखे निकाल उड़ जाते क्षणभर उड़कर आ जाते,
शव जीभ खींचकर कौवे चुभला-चुभला कर खाते ॥
— हल्दीघाटी

(३) "मेद गूद चरबी की कीच मची मेदनी मे,
बीच-बीच डोलै भूत भैरों मद धारिकै।
चायनि सौ चंडिका चबाति चड मुंडन कौ,
दतनि सौ अंतनि निचोरै किलकारी कै ॥"

(८) अद्भुत रस

आश्चर्यजनक या अभूतपूर्व असाधारण वस्तु या घटना को देख कर या सुनकर जब आश्चर्य का परितोष होता है, तब अद्भुत रस उत्पन्न होता है।

(१) स्थायी भाव—विस्मय।

(२) आलम्बन—अलौकिक या आश्चर्यजनक वस्तु या घटना।

(३) उद्दीपन—अद्भुत वस्तु या व्यक्ति का वर्णन वैचित्र्य या गुणकीर्तन।

(४) संचारी—आवेग, हर्ष, मोह, वितर्क, शका आदि।

(५) अनुभाव—स्तम्भ, स्वेद, रोमाच, सभ्रम, विस्फारित नेत्र आदि।

(६) गुण—प्रसाद।

(७) रीति या वृत्ति—पांचाली और कोमला।

उदाहरण—

(१) अम्बर लौ अम्बर अमर कियो वंशीधर,
भीषम करन द्रोन सोभा यों निहारी है।
सारी मध्य नारी है कि नारी मध्य सारी है, कि,
सारी ही की नारी है कि सारी है कि नारी है॥

(२) इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मति भ्रम मोरि कि आन बिसेखा॥
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँस दीन मधुर मुस्कानी॥
—तुलसीदास

(९) शान्त रस

ससार और शरीर की नश्वरता से अथवा तत्वज्ञान द्वारा चित्त मेंएक विशेष प्रकार की उदासीनता उत्पन्न होती है तथा भौतिक व लौकिक वस्तुओ से विराग हो जाता है, तभी निर्वेद या शान्त रस का जन्म होता है।

(१) स्थायी भाव—निर्वेद या शम।

(२) आलम्बन—अनित्यरूप ससार की असारता का ज्ञान या परमात्म चिन्तन।

(३) उद्दीपन—बुढापा, मरण, व्याधि, पुण्यक्षेत्र या ऋषि आदि का सत्सग, हितोपदेश आदि।

(४) अनुभाव—रोमाच, विलाप, ससार से विरक्ति आदि।

(५) संचारी—निर्वेद, हर्ष, स्मृति आदि।

(६) गुण—माधुर्य।

(७) रीति और वृत्ति—वैदर्भी और उपनागरिका।

उदाहरण—

(१) "दाम बिना निर्धन दु खी, तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥"

(२) "रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखौ गोय।
सुनि अठिलैहै लोग सब, बाँटि न लैहै कोय॥"

इन ९ रसो के अतिरिक्त साहित्य दर्पण मे दो अन्य रस माने गये हैं—(१) भक्ति रस, (२) वात्सल्य रस जिन्हे प्राचीन आचार्यों ने क्रमश. शान्त और शृगार रस के अन्तर्गत माना है।

(१०) भक्ति रस

शाण्डिल्य सूत्र मे कहा है "सा परानुरक्तिः इश्वरे" कि ईश्वर मे परम अनुरक्ति ही भक्ति है। भारत की भूमि आध्यात्मिकता और धार्मिक भावनाओ से आच्छादित होने के कारण तथा रामायण और भागवत की कथाओ से यहाँ का चप्पा-चप्पा भक्ति-रस से प्लावित रहा। व्यापकता और उत्कटता की दृष्टि

से भक्तिरस शान्तरस से बढा-चढा है। भक्ति और शान्त दोनो भिन्न तथा अपने में पूर्ण रस हैं। इस प्रकार जहाँ ईश्वर विषयक प्रेम की भावो-विभावो द्वारा परिपुष्टि होती है, वहाँ भक्ति रस होता है।

१—**आलम्बन**—परमेश्वर, राम, कृष्ण, अवतार आदि।

२—**उद्दीपन**—ईश्वर के अद्भुत कार्य, भक्तों का सत्सग आदि।

३—**संचारी**—औत्सुक्य, हर्ष, गर्व, निर्वेद आदि।

४—**अनुभाव**—रोमाँच, गद्गद बचन आदि।

५—स्थायीभाव—ईश्वर के प्रीत प्रेम।

उदाहरण—

(१) "मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥
साधुन सग बैठि-बैठि लोक लाज खोई।
अब तो बात फैल गयी जाने सब कोई॥"

(२) "राम नाम मणि दीप धरु जीभ देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो जो चाहसि उजियार॥"

(११) वात्सल्य रस

इस रस को हिन्दी काव्य मे मान्यता दिलाने का श्रेय सूरदास जी को है जिसे उन्होने रस की पूर्ण परिपक्वावस्था तक पहुँचा दिया कि वात्सल्य भाव एक अलग स्थायी भाव माना जाने लगा। प्राचीन आचार्यों में भी रुद्रट[1], भोज[2] और आचार्य विश्वनाथ[3] ने वात्सल्य रस को अलग रस माना है। वात्सल्य माता-पिता मे अधिक रहता है विशेषकर माता मे जिसके मन मे गर्भस्थ शिशु के साथ ही वात्सल्य आरम्भ होता है फिर कुछ समय पश्चात् दुग्ध रूप मे शरीर से फूट पडता है। वात्सल्य मे सौन्दर्य भावना, कोमलता,

---

१. स्नेह प्रकृति प्रेयात—काव्यालकार।

२ "शृगार वीर करुणाद्भुतरौद्रहास्यवीभत्सवत्सल भयानक शान्तनाम्न।"

३ स्फुट चमत्कारितया वत्सल च रस विदुः—साहित्यदर्पण।

आशा, शृंगार भावना, आत्माभिमान आदि अनेक भाव रहते हैं जिनके सम्मिश्रण से यह अत्यन्त प्रबल मनोभाव बन जाता है।

(१) आलम्बन—सन्तान।

(२) उद्दीपन—सन्तान का खेलना-कूदना, कौतुकपूर्ण चेष्टाएँ आदि।

(३) संचारी—अनिष्ट की आशंका, हर्ष, गर्व, चंचलता, उत्सुकता, श्रम।

(४) अनुभाव—ताली, चुटकी बजाना, हँसना, रोमांचित होना, मुख चूमना, आलिंगन करना आदि।

(५) स्थायी भाव—स्नेह।

उदाहरण

(१) कबहूँ ससि माँगत आरि करै कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरै।
कबहूँ करताल बजाइ के नाचत मातु सबै मनमोद भरै॥
कबहूँ रिसिआइ कहै हठि के पुनि लेत सोई जेहि लागि अरै।
अवधेश के बालक चारि सदा तुलसी मन-मंदिर में बिहरै॥

(२) कौशल्या जब बोलन जाई ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहि पराई।
धूसर धूर भरे तनु आये, भूपति बिहँसि गोद बैठाये॥

(३) किलकत कान्ह घुटुरुवन आवत,
मनिमय कनक नन्द के आँगन, मुख प्रतिबिम्बहि धावत।
कबहुँ निरखि हरि आप छाँह को कर सौ पकरन चाहत॥
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि पुनि तिहिं अवगाहत।
कनक भूमि पर कर पग छाया यह उपमा इक राजति,
करि करि प्रति पद प्रतिमनि बसुधा कमल बैठकी साजति।
बाल दसा सुख निरखि जसोदा पुनि पुनि नन्द बुलावति,
अँचरा तर लै ढाँकि सूर प्रभु जननी दूध पियावति।

रसाभास

जब रस अपनी परिपुष्ट अवस्था मे विकसित होकर भी अलौकिक आनन्द की अनुभूति न करावे बल्कि आभास मात्र ही दे सके तब वहाँ रसाभास होता है। जैसे सीप में चाँदी की झलक रहती है, वास्तव में चाँदी नहीं, वैसे ही

रसाभास मे रस की झलकमात्र रहती है। रस की सख्या की दृष्टि से ही इसके भेद हैं :—

(१) शृगार रसाभास—नायिका का उपनायका अथवा अनेक पुरुषो मे रति भाव रखना, नायक का गुरुपत्नी, ज्येष्ठ और प्रतिष्ठित नारियो से प्रेम करना अथवा अपने से विपरीत पात्र मे रति करने से शृङ्गार रसाभास होगा। जैसे—

मैं सोयी थी नहीं, छिपा मत मुझसे कुछ भी छोरी।
लो थी पकड़ कलाई उनने देती थी जब दान,
तूने मेरी ओर किया, इगित कि गयी मैं जान,
तब वे बोले दीख रही मै जनम-जनम की भोरी।
उसके बाद उढ़ाया उनने मुझे स्वयं आ शाल,
तू हँस पायी भी न तभी सट काटे तेरे गाल,
किया तनिक सीत्कार कहा उनने कि खूब तू गोरी।

—जानकी बल्लभ शास्त्री

इस कविता में युवती दासी पर नायक का रति भाव है जिसे उसकी पत्नी देख लेती है।

(२) करुण रसाभास—विरक्ति मे शोक होना।

(३) रौद्र रसाभास—गुरु, माता-पिता या अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति पर क्रोध करना।

(४) हास्य रसाभास—पूजनीय व्यक्तियो को हास्य का आलबन बनाना।

(५) वीभत्स रसाभास—महाअधर्मी व्यक्ति तथा यज्ञ के बलि पशु के हिंसा में ग्लनि या घृणा होना।

(६) भयानक रसाभास—महान् तथा दिव्य पुरुषो के स्वरूप को देखकर भयभीत होना।

(७) वीर रसाभास—निम्न कोटि के व्यक्तियो मे उत्साह होना।

(८) अद्भुत रसाभास—ऐन्द्रजालिक कार्यों मे आश्चर्य करना।

(९) शान्त रसाभास—अयोग्य व्यक्ति मे निर्वेद या शम होना।

भावाभास

जहाँ भावो का अनौचित्यपूर्ण वर्णन हो, अथवा जहाँ जिस भाव को प्रकट नही होना चाहिये वह प्रकट हो जाय तब वे भाव भावाभास कहलाते हैं। जैसे—

"दरपन मे निज छाँह सग लखि प्रीतम की छाँह।
खरी ललाई रोस की, ल्याई अँखियन माँह॥"

यहाँ क्रोध का वर्णन है किन्तु साधारण कारण होने के कारण भावाभास है।

भावशान्ति

जब एक भाव की व्यजना हो रही हो, उसी समय किसी दूसरे विरोधी भाव की व्यजना हो जाने पर पहले भाव की समाप्ति मे जो चमत्कार होता है, उसे भावशान्ति कहते है। जैसे—

कितौ मनावत पीय तउ मानत नहीं रिसात।
अरुण चूड़ धुनि सुनत ही तिय पिय हिय लपटात॥

नायिका जो नायक से रूठने के कारण मान किये बैठी थी और किसी भी प्रकार नही मान रही थी मुर्गा के बोलने पर प्रात. आगमन जानकर एकदम नायक से आलिगन बद्ध हो जाती है।

भावोदय

जहाँ किसी भाव के विलीन होते ही दूसरे भाव का उदय हो जावे और उसमे चमत्कार हो, तब भावोदय होता है। यह बहुत कुछ भावशान्ति के निकट है।

भावसन्धि

जब समान चमत्कार वाले दो भावो का वर्णन एक साथ कर दिया जावे, तो वहाँ भावसन्धि होती है। जैसे—

प्रभुहि चितइ पुनि चितइ महि राजत लोचन लोल;
खेलत मनसिज मीन जुग जनु विधुमण्डल डोल।

यहाँ उत्सुकता और लज्जा दोनो भाव वर्णित हैं।

भावसबलता

जहाँ एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, इस प्रकार बहुत से भावो का वर्णन एक ही स्थान पर किया जावे तो वहाँ भावसबलता होती है। जैसे—

"छिन रोवति छिन हँसि उठत छिन बोलति छिन मौन।
छिन छिन पर छीनी परत भई दशा धौं कौन॥"

यहाँ अश्रु, हर्ष, व्याधि और उन्माद का एक साथ वर्णन है।

गुण

रस को उत्कृष्ट बनाने का श्रेय गुण, रीति और अलकार को होता है। जिस प्रकार शूरता—साहसिकता, कठोरता, उद्दडता, नम्रता और माधुर्य आदि गुण मनुष्य की चेतन आत्मा के उत्कर्षक हैं उसी प्रकार काव्य की आत्मा रस को अभिवृद्धि देने मे गुण सहायक होते हैं। अतएव जो रस के धर्म हैं और जिनकी स्थिति रस के साथ अचल है, वे गुण कहलाते हैं। गुण तीन प्रकार के होते हैं :—
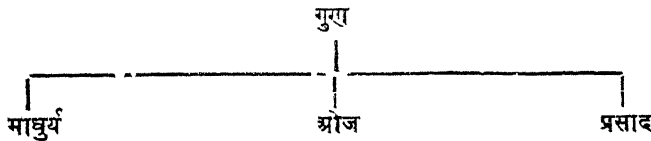
(१) माधुर्य गुण—वह गुण जो पाठक या श्रोता के हृदय को आनन्द से द्रवीभूत कर दे। यह गुण सयोग शृङ्गार से अधिक करुण रस, करुण रस से अधिक विरह शृङ्गार मे मे और विरह शृङ्गार से अधिक शान्त रस में होता है। कवर्ग, चवर्ग, तवर्ग और पवर्ग के अक्षरो का, सानुनासिक अक्षर अर्थात् ङ, ञ, ण, न, म अन्य व्यजनो के साथ सयुक्त हो, जैसे—रजन, खजन, चम्पा आदि, समास पदो का अभाव अथवा अल्प समास-पदो का प्रयोग होता है।

उदाहरण—

(१) निरखि सखी ये खजन आये।
फेरे उन मेरे रंजन ने इधर नयन मन भाये।

(२) "अलि गुंजन की मद गुंजन सौ, बन कुंजन मंजु बनाय रह्यो ;
लगि अंग अनंग तरंगन सौ, रति रंग उमंग बढ़ाय रह्यो।
बिकसे सर कंजन कंपित कै, रज रंजन लै छिरकाय रह्यो,
मलयानिल मन्द दसौ दिसि मै, मकरन्द अमंद फैलाय रह्यो।"

(२) ओज गुण—जिस काव्य के सुनने से चित्त मे स्फूर्ति और मन मे तेज उत्पन्न हो, उसमे ओज गुण होता है। यह गुण वीर रस मे होता है। वीर रस से अधिक वीभत्स मे तथा वीभत्स से अधिक रौद्र रस में होता है। इसमे द्वित्व वर्णों, संयुक्त वर्णों 'र' के संयोग से, टवर्ग और समास की अधिकता से तथा कठोर वर्णों का प्रयोग होता है। जैसे—

(१) "मरकट युद्ध विरुद्ध क्रुद्ध अरि उट्ट दपट्टहि।
अब्द शब्द करि गर्ज तजि झुकि झपि झपट्टहि॥"

(२) "चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठे बार बार।
दिल्ली दहसति चितै चाहक रखति हैं।
× × × ×
थर थर काँपति कुतुबसाहि गोलकुण्डा।
हहरि हबस भूप भीर भरकति हैं॥"

(३) प्रसाद गुण—यह गुण अन्य रचना को सरल तथा सुबोध बनाकर पाठको या श्रोताओ के हृदय मे शीघ्र ही रचना का बोध करा देता है। जैसे—

शुष्केन्धनाग्निवत स्वच्छ जलवत्सहसैवयः।
व्यारनोत्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहित स्थितिः॥

अर्थात् सूखे इंधन मे आग के प्रकाश व स्वच्छ कपडे में जल की आभा की तरह प्रसाद गुण द्वारा चित्त मे एक साथ अर्थ का प्रकाश हो जाता है। यह सभी रसो मे व्याप्त रहता है।

उदाहरण

(१) "सिखा दो ना हे मधुप कुमारि मुझे भी अपना मीठा गान।
कुसुम के चुने कटोरों से करा दो ना कुछ कुछ मधुपान॥"

(२) "श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणं।
नवकज लोचन कज मुख कर कंज पद कजारुणम्॥

× × × ×

रघुनन्द आनन्द कन्द कोसल चन्द दसरथ नन्दन।
सिर मुकुट कुडल तिलक चारु उदारु अंगविभूषनं॥"

इस प्रकार सरल, सुबोध और मृदु पदावली प्रसाद गुण की अभिव्यजना करते हैं।

रीति

विशिष्ट पद रचना को रीति कहते हैं।[१] आचार्य वामन ने 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कह कर रीति को काव्य की आत्मा माना है तथा Coleridge ने "The best words in the best order" कहकर उत्तम शब्दो की उत्तम रचना माना है। रीति तीन प्रकार की होती हैं—
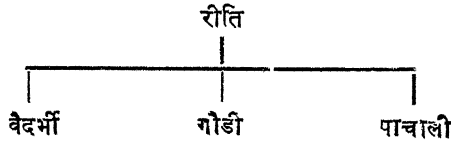
(उपनागरिका वृत्ति) (परुषा वृत्ति) (कोमला वृत्ति)

(१) वैदर्भी—जिस रचना में टवर्ग का अभाव, मधुर वर्ण, अनुनासिक और अनुस्वार वाले वर्ण, बडे-बडे समास न होकर लघु समास हो वहाँ वैदर्भी रीति अथवा उपनागरिका वृत्ति मिलती हैं। इसके अनुकूल माधुर्य गुण माना गया है। जैसे—

"जनकपुर की राज कुज विहारिका।
एक सुकुमारी सलोनी सारिका॥" —गुप्त

१. "विशिष्ट पद रचना रीति.।"—काव्यालकार सूत्र

(२) गौडी—ओज प्रकाशक वर्णों से युक्त रचना को गौडी रीति या परुषा वृत्ति कहते हैं। जैसे—

"गूँजे जयध्वनि से आसमान, सब मानव-मानव है समान।
निज कौशल मति इच्छानुकूल, सब कर्म निरत हों भेद भूल ॥"

—पन्त

(३) पांचाली—जहाँ सरल, सुबोध भाषा मे कर्ण-कटु शब्दो का परिहार कर काव्य की रचना की जाती है, वहाँ पर पाचाली रीति या कोमला वृत्ति होती है। जैसे—

"देवर की शर की अनी बना कर टाँकी।
मैने अनुजा की एक मूर्ति है आँकी।
आँसू नयनों मे हँसी बदन पर बाँकी।
काँटे समेटती फूल छीटती झाँकी।
निज मन्दिर उसने यही कुटीर बनाया।"

—गुप्त

छन्द के कलेवर में गुम्फित भाव सहस्रो श्रोताओ को मन्त्र मुग्ध कर देता है क्यो? क्योकि छन्द सगीत की योनि है, कविता की प्रारभ है। मानव क्या, पशु-पक्षी और सर्प, चेतन एव अचेतन सभी इसके आकर्षण को अनुभव करते हैं और लय पर कौन नही झूम उठता। छन्द का यह अविचल प्रभाव आज से नहीं अति प्राचीन काल से चला आ रहा है क्योकि छन्द प्रकृति की वाणी है, आदि मानव की आदिम अभिव्यक्ति का आदिम माध्यम।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने छन्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "किसी भी भाषा के रूप को सँवारने के लिए जिस प्रकार शब्द-योजना, पद-योजना और शैली आवश्यक है उसी प्रकार वर्णनीय वस्तु को सुरुचिपूर्ण बनाने के लिए छन्द-योजना भी अत्यन्त लाभदायक है।"[1] छन्दोबद्ध साहित्य रुचिर और चमत्कार पूर्ण होने के साथ ही साथ दीर्घ जीवी भी होता है। यही कारण है कि वैदिक

---

१ काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्ववृत्ताना विनियोग विभागवित ॥

—सुवृत्त तिलक—आचार्य क्षेमेन्द्र

कालीन गद्य रचना तो हमें आज अप्राप्य है जब कि वेद छन्दबद्ध होने के कारण आज भी जीवित है।* इसलिए लगभग सभी प्राचीन साहित्य—धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, व्याकरण कोष अलकार, कथा-साहित्य, पुराण, इतिहास, रामायण, महाभारत, अर्थशास्त्र इत्यादि छन्द का आश्रय लेकर ही लिखे गये हैं। छन्दो की क्रियात्मक उपयोगिता पर दृष्टिपात करते हुए छान्दोग्य उपनिषद में लिखा है—

"देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयी विद्यां प्राविशन्,
ते छन्दोभिरात्मानमाच्छादयन
यदेभिराच्छादयंस्तच्छन्दसा छन्दस्तवम्।'

अर्थात् देवताओ ने मृत्यु से भयभीत होकर अपने आपको अर्थात् अपनी कृतियो को छन्दो मे ढाँप लिया। मौत से आच्छादन के कारण ही छन्दो को छन्द कहते हैं। एक दूसरे स्थान पर सायणाचार्य ने कहा है कि "अपमृत्यु वारयितुमाच्छादयतिति छन्द" अर्थात् कलाकार और कलाकृति को छन्द अपः मृत्यु से बचाता है। ऋगवेद के सायण द्वारा किये भाष्य मे एक स्थान पर लिखा है—"छादयन्ति ह्वा एन छन्दासि पापात्कर्मण "अर्थात् छन्द मूल पाठ को पाप-कर्म अर्थात् मिश्रण, मिलावट और क्षेपकत्व से बचाता है।

ससार की समस्त रचनाएँ तीन रूपो मे पाई जाती हैं—पद्य, गीत, गद्य। वेद को 'छन्दस्' कहा गया है। वेद के पद्य भाग को ऋक या मत्र, गीत भाग का साम और गद्य भाषा के कुछ अश को यजु. और कुछ को ब्राह्मण कहते हैं। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य मे ७ छन्दो का प्रयोग मिलता है—

(१) गायत्री—२४ वर्ण, (२) उष्णिक—२८ वर्ण, (३) अनुष्टुप—

---

* "The credit of preserving without serious corruption the Vedic texts may be largely due to the fact that they are in a fixed metrical form"

—*On Vedic Metre by Mr Ghate*

३२ वर्ण, (४) बृहती—३६ वर्ण, (५) त्रिष्टुप—४४ वर्ण, (६) जगती—४८ वर्ण, (७) पक्ति—४० वर्ण। कात्यायन ने कालान्तर में इन्ही छन्दो के बहुत से भेद किये जो लौकिक छन्द कहलाये।

किसी देश की भाषा उस देश के निवासियो की अभिव्यक्ति की ललित और मनोहर साधन होती है। छन्द उस भाषा को स्निग्धता, माधुर्य, गति और मोहकता प्रदान करता है। छन्द का अर्थ होता है—शासन अर्थात् शब्द-प्रवाह को सयम मे रखना और यह सयम पद, मात्रा, वर्ण, यति, सगति आदि से होता है। पाश्चात्य देशो मे भी विद्वानो ने छन्द की प्रकृति और उसके उद्देश्य की व्याख्या की है। इनमें से कतिपय नीचे उल्लेखनीय हैं :—

(१) अरस्तू—छन्द वह रीति है जिसके द्वारा दो अवधियो के शब्द एक प्रकार से ध्वनित किये जाय।

(२) ब्लेयर—एक जैसे ध्वनि-समूहो की आवृत्ति ही छन्द है।

(३) शूत्से—दो पद्यो के अन्त में दो ध्वनि-मात्राओ की मिलती हुई एक सी ध्वनि वाले पद्य को छन्द कहते हैं।

(४) एडविन गेस्ट—एक प्रकार से व्यवस्थित ध्वनि वाली मात्रा-ध्वनियों को विशेष क्रम से रखने को छन्द कहते हैं।

(५) जिर मुन्सकी—छन्द वह ध्वन्यात्मक आवृत्ति है जो पद्य की छन्दोबद्ध रचना मे व्यवस्था उत्पन्न करता है।

(६) क्विण्टीलियन—दो या कई वाक्यो को एक समान तुकान्त करने की कवि-कुशलता को छन्द कहते हैं।

(७) ग्रामों—छन्द कान के लिए है आँख के लिए नही।

इस प्रकार भारतीय एव पाश्चात्य विद्वानो के मतो पर दृष्टिपात करने के

पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि छन्द का सीधा सम्बन्ध संगीत से जुडकर अर्थ-सौन्दर्य और ध्वनि-सौन्दर्य की सृष्टि करना है।

"छोटी-सी भी ध्वनियो का तोल-माप में बराबर होना छन्द रचना का मूल आधार है। ध्वनियो को बराबर करने के विशेष नियम हैं। इन नियमो में बँधी हुई ध्वनियाँ ही लय उत्पन्न कर सकती है और इन्ही नियमो मे आबद्ध रचना को छन्द कहते हैं।"*

छन्द शास्त्र

काव्य के अन्तर्गत गद्य और पद्य समाहित हैं एव गद्य और पद्य का मिश्रण चम्पू काव्य कहलाता है। गद्य वह रचना है जिसमे मात्रा, गति, प्रवाह आदि का नियमित नियम नही होता किन्तु अर्द्ध विराम, विराम और व्याकरण के अन्य नियमो का पालन किया जाता है। इसके विपरीत पद्य वह रचना है जिसमें व्याकरण के नियम इतने आवश्यक नहीं समझे जाते वरन् यति, गति, मात्रा, लय, वर्ण, तुकान्त आदि का पालन अत्यन्तावश्यक हैं। प्रत्येक कविता में कवि के हृदय मे निकला हुआ निजी सगीत होता है, इसीलिए कविता और सगीत का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। अतएव जिस शास्त्र में पद्य-रचना का नियम, लक्षण, भेद आदि विषयो पर विचार किया जाता है वह पिगल शास्त्र या छन्द शास्त्र कहलाता है। पिगल छन्द का समानार्थी शब्द है। इस शास्त्र के सर्वप्रथम रचयिता महर्षि पिंगल थे जो शेषनाग के अवतार माने जाते थे और इन्ही के नाम पर शास्त्र का नामकरण हुआ। कहा जाता है, इनके ग्रन्थ में १,६७,७७,२१६ प्रकार के वर्ण-वृत्तो का उल्लेख है।

छन्द का अर्थ है 'बन्धन' और बिना बन्धन के रचना गद्य की सीमा मे आ जावेगी। पद्य बनाये रखने के लिए यति, गति, लय, मात्रा तथा तुकान्त के नियमो का पालन करना आवश्यक है। लय के अधिक लचीले तथा विशिष्ट रूप को छन्द कहते हैं। अथवा जिस रचना मे वर्ण, मात्रा लय, गति यति, और

* हिन्दी छन्द प्रकाश—रघुनन्दन शास्त्री, पृष्ठ ३६।

चरण सबधी नियमो का पालन और वर्णन हो, उसे छन्द कहते हैं। नीचे सक्षेप मे इन नियमो से क्या तात्पर्य है, बताते है।

यति—किसी छन्द को पढते समय नियमित अक्षरो अथवा मात्राओ पर जहाँ रुकना पडता है उसे यति, विराम या विश्राम कहते हैं। जैसे—

मेरे जीवन की उलझन, बिखरी थी उनकी अलकें।
पी ली मधु मदिरा किसने, थी बन्द हमारी पलकें॥

इस छन्द मे 'उलझन', 'अलके', 'किसने' और 'पलके' के बाद यति है।

गति—प्रत्येक छन्द मे गति या प्रवाह होना आवश्यक है ताकि पढने मे रुकावट न पडे। गोति प्रवाह को गति कहते हैं। वर्ण-वृत्तो मे तो इसकी विशेष अपेक्षा नही रहती लेकिन मात्रिक छन्दो में इसकी ओर विशेष ध्यान देना पडता है। जैसे—

जो गति है दीप की कुल कपूत को सोय।
बारे उजियारो करै, बढ़ै अधेरो होय॥

यदि इसी छन्द को थोडा-सा उलट दिया जाय, तो गति का अभाव स्वभावत हो जावेगा और तब वह छन्द नही रह जावेगा। जैसे—

गति है दीप की जो, कपूत कुल की सोय।
करै उजियारो बरै, अन्धेरो बढ़ै होय॥

उपर्युक्त छन्द में मात्राएँ सब बराबर हैं किन्तु गति के अभाव मे दोषयुक्त हो गया।

मात्रा—किसी अक्षर या वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है, उसे मात्रा कहते हैं। देवनागरी वर्णमाला मे दो प्रकार के अक्षर होते हैं—(१) दीर्घ—आ, पा, ऊ, नी, सा आदि, (२) ह्रस्व—अ, प, उ, न, स आदि। पिंगल शास्त्र के अनुसार दीर्घ अक्षरो की मात्रा को गुरु एव ह्रस्व को लघु कहते हैं। मात्रा-गणना मे गुरु और लघु के सकेत चिह्न प्रयुक्त होते हैं—

दीर्घ अथवा गुरु (ऽ) = २ मात्राएँ।

ह्रस्व अथवा लघु (।) = १ मात्रा

जैसे—

| S | S S S | S S S S | | S |

बिना विचारे जो करै, सों पाछे पछताय ।

S | | S S S | S | | S S | | S |

काम बिगारो आपनो, जग मे होय हँसाय ।।

लघु और गुरु नियम

लघु और गुरु वर्णों को पहचानने के तथा निर्धारित करने के लिए कतिपय नियम हैं, जो निम्नलिखित हैं :—

(१) लघु वर्ण के लिए एक मात्रा और गुरु वर्ण के लिए दो मात्राएँ गिनी जाती हैं । व्यजन की मात्राओं का विचार उनके साथ जुडे हुए स्वर के अनुसार किया जाता है । जैसे 'सीतापति' मे 'सी' और 'ता' गुरु तथा 'प' और 'ति' लघु हैं । इस प्रकार इसमे ६ मात्राएँ हैं ।

(२) विसर्ग [:] से युक्त लघु वर्ण भी गुरु मात्रा वाला माना जाता है, जैसे—दु.ख, नि श्वास, मे 'दु:' और 'नि:' लघु होते हुए भी गणना के समय गुरु माने जावेगे ।

(३) अनुस्वार [ ] से युक्त ह्रस्व अक्षर भी दीर्घ या गुरु मात्रा वाला माना जाता है । जैसे—गगा, तरग, पखा, झडा आदि में 'ग, र, प, और झ' में गुरु मात्रा है क्योकि इनके उच्चारण में समय अधिक लगता है ।

(४) जिस वर्ण के ऊपर अर्द्ध-अनुस्वार या चद्रविन्दु (ँ) हो उसमे एक ही मात्रा मानी जाती है अर्थात् वह लघु गिना जाता है । जैसे—'हंसाय', 'फँसाना', आदि मे 'हँ' और 'फँ' लघु हैं ।

(५) सयुक्त वर्ण मे पहले का अक्षर दीर्घ माना जाता है । जैसे—'सत्कार', 'सत्य', 'अक्षर' मे स, स और अ मात्रा-गणना में द्विमात्रिक है अर्थात् गुरु माने जावेगे ।

(६) सयुक्त वर्ण मे यदि पहले का अक्षर दीर्घ है तो उसमें आधा अक्षर नही जुडता। जैसे—'शात', 'गार्गी' मे 'शा' और 'गा' में आधा 'न' और आधा 'र' नही जुडेगा।

(७) यदि प्रारम्भ का ही अक्षर आधा हो, तो उसकी गणना नही की जाती। जैसे–'स्पर्धा', 'स्वय', 'प्यार' मे आधा 'स' और आधा 'प' बाद वाले अक्षरो के साथ नही जुडेगा।

(८) कभी-कभी सयुक्त वर्ण मे पहले का अक्षर दीर्घ नही माना जाता क्योकि उसकी ध्वनि दुर्बल होती है। जैसे—'कुम्हार', 'दुर्बल' मे 'कु' और 'दु' एकमात्रिक अर्थात् लघु हैं।

(९) हलन्त अक्षर (क्, ख्, ग्) के पहले वाले अक्षर को दो मात्राएँ गिनी जाती हैं और हलन्ताक्षर की मात्रा नही गिना जाती। जैसे—

सत्, चित्, परिषद्, चिदम्बरम्।
S S ।।S ।S।S

(१०) इ, उ, और ऋ की ह्रस्व मात्राओ की गणना नही होती।

इस प्रकार साधारणतया उपर्युक्त नियमो के आधार पर मात्राओ की गणना करनी चाहिए लेकिन यही नियम पत्थर की लकीर नही है, इनके अपवाद भी हो सकते हैं। इसलिए प्रमुखत. इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसी अक्षर के उच्चारण मे जो समय लगे, उसी के अनुसार मात्रा की गणना करनी चाहिए। जैसे—

"मोहि सुख बहुत कन्हैया दीन्हा।"

इसमे 'मो' दीर्घ होते हुए भी मात्रा-गणना मे लघु माना जायेगा क्योकि उच्चारण मे समय कम लगता है।

(११) जहाँ शब्दो का समास हो उसमे दूसरे शब्द का प्रथम वर्ण संयुक्त वर्ण होता है तथा पूर्ववर्ती लघु वर्ण भी दीर्घ हो जाता है। जैसे—

जन्म-स्थान, धर्म-स्थविर।
SSS। SS ।।।

लय—प्रकृति के इस विशाल क्षेत्र में चर, अचर, जगम, स्थावर जिसमे भी जीवन है उसमे लय अवश्य है क्योकि जीवन-शक्ति का मूल तत्व लय है। लय और छन्द का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है और छन्द कवि के अन्तर्जगत् की अभिव्यक्ति है जिस पर नियम का बन्धन है और उस अभिव्यक्ति का सामजस्य लय के साथ है।

तुक—किसी पद्य के प्रत्येक चरण के अन्तिम अक्षर या शब्द को तुक कहते हैं। जिस पद्य के ऊपर-नीचे के चरणो के अन्तिम शब्द एक मेल के रक्खे जाते हैं, वह पद्य सतुकान्त और जिसमें बेमेल रहता है, उस कविता को अनु-कान्त कहा जाता है। जैसे—

तुकान्त—बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट सग जनि देहु विधाता॥

अतुकान्त—अपने सपनो की सुई तले
किसी रेकार्ड सी
जो स्वयं घूमती है गाती है
जिसकी जवानी

खुद जिसके लिए क्लोरोफार्म का।
एक मीठा नीद भरा हलका झोंका है॥

चरण—मात्रिक छन्दो को पढते समय जहाँ रुकना पडता है उसके पूर्व का समस्त पद एक चरण कहलाता है। जैसे—

तड़प-तड़प माली अश्रु, धारा बहाता।
मलिन मलिनिया का दु ख, देखा न जाता॥

उपर्युक्त पद्य मे 'तडप तडप माली अश्रु" एक चरण है "धारा बहाता" दूसरा चरण है। इसी प्रकार द्वितीय पक्ति मे भी दो चरण हैं। चरण को ही पद या पाद भी कहते हैं।

छन्द-भेद

मात्रा और वर्णों के विचार से छन्दो के निम्न तीन मुख्य भेद तथा अन्य प्रभेद है :—
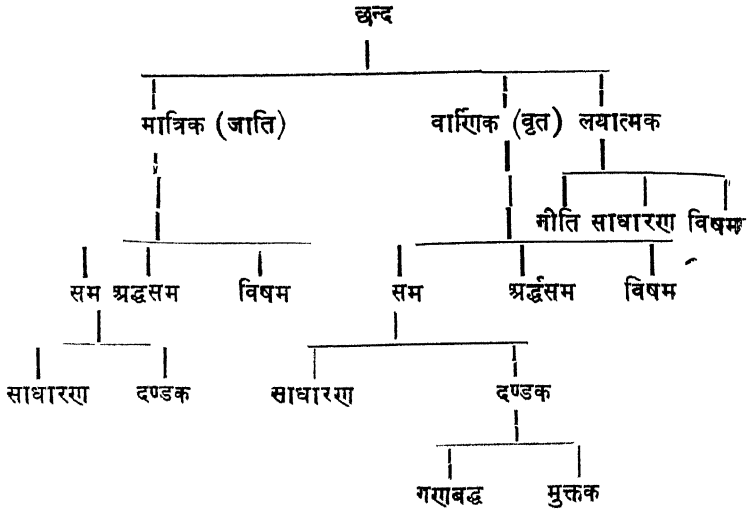
(१) वर्णिक छन्द—"गलसमवेत स्वरुपेण नियता वाग वृत्तम" 'छन्दः परिमल, मे वर्णिक छन्द की परिभाषा इन शब्दो मे की है। तात्पर्य यह है, जिसके चारो चरणो मे लघु गुरु के नियमानुसार वर्णों की सख्या और क्रम आदि से अन्त तक समरूप रहती है।

(२) मात्रिक छन्द—'छन्द : परिमल' मे इसकी परिभाषा यो दी है—"मात्राक्षर सख्यया नियता वाक् छन्द." जिसके चारो चरणो में मात्राओ की सख्या यति नियम के साथ हो, अक्षर या वर्ण भले ही कम-ज्यादा हो, तो कोई हानि नही।

उपर्युक्त दोनो भेदो के सम, अर्द्धसम और विषम तीन प्रभेद है।

(अ) सम—जिन छन्दो मे चारो चरण एक से हो तथा उनकी मात्राओ

और वर्णों मे समानता पायी जाती हो, वहाँ मात्रिक सम अथवा वार्णिक सम छन्द होता है।

मात्रिक सम—चौपाई, हरिगीतिका, रोला आदि।

वार्णिक सम—बसन्ततिलका, मालिनी, त्रोटक आदि।

(ब) अर्द्धसम–जिस छन्द के पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरण में बराबर मात्राएँ हों अथवा वर्ण क्रम एव सख्या समान हो। वार्णिक अर्द्ध-सम का प्रयोग विशेषतः सस्कृत मे ही पाया जाता है।

मात्रिक अर्द्धसम—दोहा, सोरठा, बरवै आदि

वार्णिक अर्द्धसम—

(स) विषम—जिसके चारो चरण के वर्ण या मात्रा असमान हो। इसमे चरणो की सख्या भी न्यूनाधिक हो सकती है। हिन्दी भाषा मे इन छन्दो का प्रचार कम है।

वार्णिक और मात्रिक सम छन्दो के पुनः दो भेद हैं—

(क) सम साधारण—जिन सम छन्दो मे १ से २६ तक मात्राएँ अथवा वर्ण होते है।

(ख) सम दण्डक—जिसमे एक से लेकर बत्तीस मात्राएँ या वर्ण होते हैं।

सम दण्डक वार्णिक (वृत्त) छन्द के अन्य दो भेद होते है।

(१) गणबद्ध—तीन तीन वर्णों के समूह को एक गण कहते हैं। ये सख्या में ८ होते हैं :—

नाम—	यगण,	मगण,	तगण,	रगण,	जगण,	भगण,	नगण,	सगण
चिह्न—	।SS	SSS	SS।	S।S	।S।	S।।	।।।	।।S

गणो के नाम तथा लक्षण स्मरण रखने के लिए अग्रलिखित सूत्र और दोहे बडे उपयोगी हैं।

श्री रघुनन्दन शास्त्री ने छन्दो का विभाजन कर निम्न ढग से तालिका प्रस्तुत की है :—
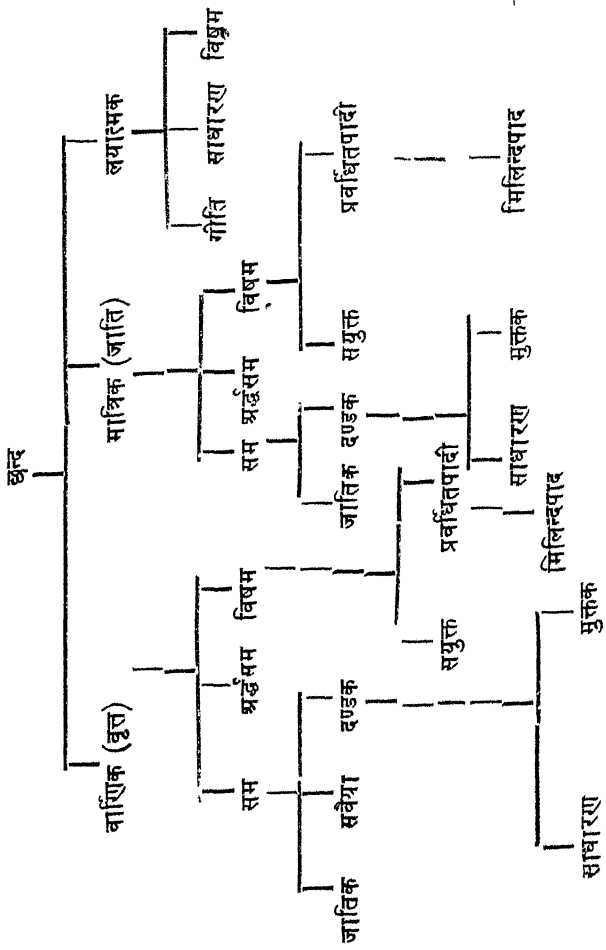
दोहा—(१) [यमाता राज भान सलगा]

इस सूत्र मे प्रथम आठ वर्ण आठ गणो के नाम गुण-सहित परिचय देते है तथा अन्तिम दो अक्षर लघु और गुरु के नाम द्योतक हैं। जैसे—यगण का रूप यदि जानना है तो सूत्र मे 'य' के साथ आगे के दो वर्ण 'मा' और 'ता' जोड़ दो, तो बन गया 'यमाता' (। ऽ ऽ) यगण का चिह्न मालूम हो गया, १ लघु २ गुरु, अर्थात् । ऽ ऽ, इसी प्रकार से इस सूत्र से प्रत्येक गण का नाम और चिह्न मालूम किया जा सकता है।

(२) आदि मध्य अवसान मे, भ ज स सदा गुरु मान।
क्रम से होते य र त लघु, म न गुरु लघु जिय जान॥

यदि हमे गणो की पहचान है तथा किस वार्णिक छन्द मे कौन-कौन गण हैं, स्मरण है तो छन्द की पहचान हम कर सकते हैं। जैसे—

दिवस का अवसान समीप था,
। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ
गगन था कुछ लोहित हो चला।
। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ

इस कविता में नगण, भगण, भगण और रगण हैं और ये ४ गण समूह द्रुति बिलम्बित छन्द मे होते है, अतः हम यह पहचान सकते हैं कि यह द्रुति बिलम्बित छन्द है।

समस्त गणो की सारिणी (Chart) मय नाम, रूप, संकेत, देवता, फल, अवतार, शुभ-अशुभ के उदाहरण अगले पृष्ठ पर दिये हैं।

(२) मुक्तक—इस प्रकार के छन्द में केवल वर्णों की गणना की जाती है, मात्राओ और गणो पर कोई विचार नही होता। अग्निपुराण में मुक्तक पद की परिभाषा यों दी गई है—

"मुक्तक श्लोक एवैकश्चमत्कार क्षम सताम्" अर्थात् जो श्लोक स्वतः अपने चमत्कार-प्रदर्शन की क्षमता रखता हो, वही मुक्तक है।

वार्णिक-गण-सारिणी

संख्या	नाम	संकेत	रूप	देवता	फल	अवतार	शुभ-अशुभ	उदाहरण	लक्षण
१	यगण	य	ISS	जल	वृद्धि	कच्छप	शुभ	भरोसा	प्रथम लघु, द्वितीय और तृतीय गुरु
२	मगण	म	SSS	पृथ्वी	लक्ष्मी	मत्स्य	शुभ	मायावी	तीनो गुरु
३	तगण	त	SSI	आकाश	शून्य	वामन	अशुभ	तातार	प्रथम और द्वितीय गुरु एवं तृतीय लघु
४	रगण	र	SIS	अग्नि	दाह	वाराह	अशुभ	राधिका	प्रथम गुरु, द्वितीय लघु, तृतीय गुरु
५	जगण	ज	ISI	सूर्य	भय	परशुराम	अशुभ	नदीश	प्रथम लघु, द्वितीय गुरु, तृतीय लघु
६	भगण	भ	SII	चन्द्रमा	यश	रामचन्द्र	शुभ	भारत	प्रथम गुरु, द्वितीय और तृतीय लघु
७	नगण	न	III	स्वर्ग	सुख	कृष्ण	शुभ	भवन	तीनो लघु
८	सगण	स	IIS	वायु	विदेश-गमन	नृसिंह	अशुभ	भगिनी	प्रथम एवं द्वितीय लघु तथा तृतीय गुरु

छन्दों में शुभ और अशुभ अक्षर

छन्द मे शुभ और अशुभ अक्षर पर भी बहुत ध्यान दिया जाता है। व्यजन मे १५ शुभ और १६ अशुभ अक्षर माने गये हैं, जो निम्न हैं :—

शुभ अक्षर—क, ख, ग, घ, च, छ, ज, ड, द, ध, न, य, श, स एव क्ष।

अशुभ अक्षर—ङ, झ, ञ, ट, ठ, ढ, ण, त, थ, प, फ, ब, भ, म, र, ल, व, ष तथा ह।

इनके अतिरिक्त झ, ह, र, भ और ष, ये ५ अक्षर अधिक दूषित होने के कारण दग्धाक्षर कहलाते हैं। छन्द के प्रारम्भ मे अशुभ अक्षर रहने से छन्द दूषित समझा जाता है। लेकिन अशुभ और दग्धाक्षरो को दीर्घ कर देने से दोष मिट जाता है।

(अ) वार्णिक छन्द

१—उपेन्द्रवज्रा

लक्षण—[ज, त, ज, ग, ग] जतौ जगौ गाय उपेन्द्रवज्रा, इस छन्द मे कुल ११ वर्ण होते हैं एव ५ तथा ६ अक्षरो पर यति होता है। प्रत्येक चरण मे जगण ,तगण, जगण और दो गुरु इस क्रम से होते हैं। ज त ज ग ग
ISI SSI ISI S S

उदाहरण—

(१) अनेक ब्रह्मादि न अन्त पायो।
अनेक धा वेदन गीत गायो॥
तिन्हे न रामानुज बधु जानौ।
सुनौ सुधी केवल ब्रह्म मानौ॥

(२) त्वमेव माता च पिता त्वमेव।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव॥
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव।
त्वमेव सर्वम् मम देव देव॥

२ इन्द्रवज्रा

लक्षण—[त, त, ज, ग, ग] ता ता जगो गावहु इन्द्रवज्रा। प्रत्येक चरण मे कुल ११ वर्ण होते हैं।

त त ज ग ग

SSI SSI ISI S S

उदाहरण—

(१) यत्रैव गंगा यमुना त्रिवेणी।
गोदावरी सिन्धु सरस्वती चः॥
सर्वाणि तीर्थानि वसति तत्र।
यत्राच्युतोदार कथा प्रसगः॥

(२) ससार है एक अरण्य भारी।
हुए जहाँ है हम मार्ग चारी॥
जो कर्म रूपी न कुठार होगा।
तो कौन निष्कंटक पार होगा॥

३—उपजाति

लक्षण—यह इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनो से मिलाकर छन्द बनता है। जब एक ही छन्द मे कुछ चरण उपेन्द्रवज्रा के तथा शेष चरण इन्द्रवज्रा के हो, तो उपजाति छन्द बनता है।

उदाहरण—

(१) परोपकारी बन बीर आओ। (१)
नीचे पड़े भारत को उठाओ॥ (२)
हे मित्र त्यागो मद मोह माया। (३)
नहीं रहेगी यह नित्य काया॥ (४)

पहली और चौथी पक्ति मे उपेन्द्रवज्रा और तीसरी तथा दूसरी पक्ति में इन्द्रवज्रा छन्द है।

(२) पुराण गावै नितही अठारे। —उपेन्द्रवज्रा
श्रुती सबै ही हँस के उचारे। —इन्द्रवज्रा
एकै जगज्ज्योति भले प्रकारे। —इन्द्रवज्रा
सुकीर्ति गाते सब देव हारे। —उपेन्द्रवज्रा

४—द्रुति बिलम्बित

लक्षण—[न, भ, भ, र] द्रुति बिलम्बित हो न भ भार से। प्रत्येक चरण मे १२ अक्षर रहते हैं। नगण, भगण, भगण, रगण का क्रम--

न भ भ र
।।। ऽ।। ऽ।। ऽ।ऽ

उदाहरण—

(१) कमल लोचन क्या कल आ गये।
पलट क्या कुकपाल क्रिया गयी॥
किसलिए बज कानन मे उठी।
मुरलिका नलिका उर बालिका॥

(२) दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु शिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी कुल बल्लभ की प्रभा॥

५—वंशस्थ

लक्षण—[ज, त, ज, र] सुजान वशस्थ विल ज ता जरा। प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण और रगण मिलाकर १२ वर्ण होते हैं—

ज त ज र
।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ

उदाहरण—

महाबली जूझत ही प्रहस्त को ।
चढ्यो तही रावण मीडि हस्त को ॥
अनेक भेरी बहु दुन्दुभि बजैं ।
गयन्द क्रोधान्ध जहाँ-तहाँ गजै ॥

६—भुजंग प्रयात

लक्षण—[य, य, य, य] भुजग प्रयात भुजग प्रयात । प्रत्येक चरण में ४ यगण होते हैं ।

य	य	य	य
ISS	ISS	ISS	ISS

उदाहरण—

(१) नमामीशमीशान निर्वाण रूपं ।
विभु व्यापक ब्रह्म वेद स्वरूपं ॥
निज निर्गुणं निर्विकल्प निरीह ।
चिदाकाशमाकाशवास भजेह ॥

(२) अरो व्यर्थ है व्यजनों की बड़ाई ।
हटा थाल तू क्यों इसे साथ लाई ॥
वही पार है जो बिना भूख भावै ।
बता किन्तु तू ही उसे कौन खावै ॥

७—मालिनी

लक्षण—[न, न, म, य, य] ८ और ७ पर यति ।

न	न	म	य	य
III	III	SSS	ISS	ISS

उदाहरण—

(१) जब विरह विधाता ने सृजा विश्व मे था।
तब स्मृति रचने मे कौन सी चातुरी थी ?
यदि स्मृति विरचा ही तो उसे क्यों बनाया ?
उर छिति बहु पड़ा बीज नि.क्षेपकारी ॥

(२) अतुलित बलधाम स्वर्ण शैलाभ देह।
दनुज वन कृशानु ज्ञानिनामग्रगण्यं ॥
सकल गुण निधानं. वानराणामधीशं।
रघुपति वरदूत वात जात नमामि ॥

८—बसन्ततिलका

लक्षण—[त, भ, ज, ज, ग, ग] जानौ बसन्ततिलका तु भजौ जगौ गा। इसके प्रत्येक चरण मे तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरु होते हैं। कुल मिलाकर १४ वर्ण होते हैं।

क्रम से	त	भ	ज	ज	ग	ग
	SSI	SII	ISI	ISI	S	S

उदाहरण—

(१) नाना पुराण निगमागम सम्मत यद्।
रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि ॥
स्वान्तस्सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा।
भाषा निबन्ध मति मजुल मातनोति ॥

(२) हूँ मैं नितान्त रुचि से तुझको उठाती।
प्यारे पदांक अब तू मम अक में आ।
हा दैव क्या यह हुआ ? उह क्या करूँ मैं ?
कैसे हुआ प्रिय पदांक विलोप भू में ?

यह छन्द कोमल भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त है क्योंकि इसमें रोचकता, लालित्य, सौन्दर्य और सुख है ।

६—मन्दाक्रान्ता

लक्षण—[म, भ, न, त, त, रा, ग] ४, ६ और ७ पर यति मन्दाक्रान्ता, कर सुमति को 'मा भनो ता त गा गा' । प्रत्येक चरण मे मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु मिलाकर १७ वर्ण होते है ।

म	भ	न	त	त	ग	ग
SSS	SII	III	SSI	SSI	S	S

उदाहरण—

(१) कुंजों-कुंजों प्रतिदिन जिन्हे चाव से था चराया ।
जो प्यारी थी परम ब्रज के लाड़िले को सदा ही ।।
खिन्ना दीना विकल बन मे आज जो घूमती हैं ।
ऊधो कैसे हृदय धन को हाय ! वे धेनु भूली ।।

(२) दो वर्शों में प्रकट करके पावनी लोक लीला ।
सौ पुत्रों से अधिक जिनसी पुत्रियाँ पुण्यशीला ।।
त्यागी भी है, शरण जिनके जो अनासक्त गेही ।
राजा योगी, जय जनक वे, पुण्य देही विदेही ।।

१०—शिखरिणी

लक्षण—[य, म, न, स, भ, ल, ग] यमी ना सो भू ला गुण गणनि ग गा शिखरणी, प्रत्येक चरण में यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, अन्त में लघु और गुरु मिलाकर १७ वर्ण होते हैं । ६ और ११ ।

य	म	न	स	भ	ल	ग
ISS	SSS	III	IIS	SII	I	S

उदाहरण—

(१) अनूठी आभा से सरस सुषमा से सुरस से ।
बना जो देती थी वह गुणमयी भू विपिन को ।

निराले फूलों की विविध वाली अनुपमा।
जड़ी बूटी नाना बहु फलवती थी विलसती।
(२) मनोभावों के हैं शतदल जहां शोभित सदा,
कला हॅस श्रेणी, सरस रस क्रीड़ा निरत है।

११—शार्दूल विक्रिड़ित

लक्षण—[म, स, ज, स, त, त, ग] "मैं साजौ सत तै गुरु सुमिरिक शार्दूल विक्रीड़िवै।" प्रत्येक चरण में मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, और गुरु मिलाकर १६ वर्ण होते हैं, १२ और ७ पर यति।

म	स	ज	स	त	त	ग
SSS	IIS	ISI	IIS	SSI	SSI	S

उदाहरण—

(१) ज्यों-ज्यों थी रजनी व्यतीत करती, औ देखती व्यौम को।
त्यों-त्यों उनका प्रगाढ़ दुःख भी, दुर्दान्त था रो रहा॥
(२) सायंकाल हवा समुद्र तट की आरोग्यकारी यहां।
प्राय. शिक्षित सभ्य लोग नित ही जाते इसी से वहाँ॥
बैठे हास्य विनोद मोद करते, सानन्द वे दो घड़ी।
सो सोभा उस दृश्य की हृदय को, है तृप्ति देती बड़ी॥

१२—सवैया

जिन वर्णों के छन्दो मे २२ से २६ तक वर्ण होते हैं उन्हे सवैया कहते हैं। आचार्य भिखारीदास के छन्दार्णव पिंगल में निम्न छन्द लिखा है जिसमें कई सवैयो के लक्षण एक साथ दिये हैं।

सात भ है मदिरा गुरु अन्तहु दै लघु और चकोर कहो गुनि।
ताहु गुरु करि मत्तगयन्द, ल हू मदिरा शिर मानिनी ये सुनि॥
आठ करो य भुजग, र लक्षिय सो दुमिला त हि अभार है पुनि।
जा हि सु मोतियदाम बनावहु, भागन आठ किसीट रचो पुनि॥

अर्थात् सात भगण और अन्त मे गुरु होने से मदिरा, उसके साथ एक और लघु देने से चकोर, उस लघु को गुरु अर्थात् २ गुरु कर देने से मत्तगयन्द, मदिरा के प्रारम्भ मे एक लघु रख देने से मानिनी या सुमुखी, आठ यगण से भुजग, आठ रगण से लक्षी, आठ सगण से दुर्मिल, आठ तगण से अभार, आठ जगण से मोतियदाम, आठ भगण से किरीट सवैया की रचना करो।

इस प्रकार इसमे १० प्रकार के छन्दो का उल्लेख है जिसमें से तीन, भुजंग, लक्षी और आभार अधिक प्रचलित नही हैं। इन्हे छोड कर शेष सवैया आगे वर्णित है।

(क) मदिरा सवैया—इसमें ७ भगण और अन्त में गुरु मिलाकर २२ वर्ण होते हैं। भगण ग
S I I S

उदाहरण—

(१) रावण की उतरी मदिरा चुपचाप पयान जु लंक कियो।
राम बरी सिय मोदभरी नभ में सूर जै जयकार कियो॥

(२) राम को काम कहा रिपु जीतहि कौन कबै रिपु जीत्यो कहाँ।
बालि बली छल सों भृगु नन्दन गर्व हरो द्विज दीन महा॥

—केशवदास

(ख) लवंगलता सवैया—इसमें ८ जगण और अन्त में लघु मिलाकर २५ वर्ण होते हैं। जगण लघु
I S I I

उदाहरण—

(१) कुमार के रंग निवास की है अलबेली नवेली तहां रमनी।
लखै छवि सोवत में मुख की प्रति एक की ऐसी लुगाई सुनी॥
—रामचन्द्र शुक्ल

(२) कलिंदिनि तीर खड़े बलवीर, सुबालन की गहि बांह सबौ।
सदा हमरे हिय मन्दिर में यहि बानक सों करिये बसिबौ॥

(च) किरीट सवैया—इसमें ८ भगण मिलाकर २४ वर्ण होते हैं।

भगण
ऽ। ।

उदाहरण—

(१) पापी अजामिल पार कियो जेहि नाम लियो सुत ही को नारायण।
त्यों पद्माकर लात लगें पर विप्रहु के पग चौगुने चायन॥
—पद्माकर

(२) मानुष हौं तौ वही रसखानि बसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तौ कहा बसु मेरो चरौ नित नन्द कि धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तौ वही गिरि कौ जु धर्‌यो करि छत्र पुरंदन धारन।
जो खग हौं तौ बसेरौ करौ मिलि कालिंदि कूल कदंब के डारन॥

(छ) दुर्मिल सवैया—इसमें ८ सगण कुल मिलाकर २४ वर्ण होते हैं। इसे चन्द्रकला भी कहते हैं।

सगण
। । ऽ

उदाहरण—

(१) जकड़े हमको तुम खूब रहो, परवाह न हमें इस बन्धन की।
कुछ सोच नहीं हमको इसका, नित है बढ़ती तनुता तन की॥
—गोपाल शरण सिंह

(२) ध्रुव धर्म धरै पर दुःख हरै तन त्याग तरै भवसागर को।
दिन फेर पिता वर दे सविता कर दे कविता कवि 'शंकर' को॥

(३) कवि कोविद वृन्द बखान रहे सबका अनुभूत यही मत है।
उपमान विहीन रचा विधि ने बस भारत के हम भारत हैं॥
—नाथूराम शर्मा

(ञ) सुन्दरी सवैया—इसमे ८ सगण तथा अन्त में गुरु मिलाकर २५ वर्ण होते हैं। इसे मल्ली भी कहते हैं। सगण गुरु
। । ऽ ऽ

उदाहरण—

(१) सुख शान्ति रहे सब ओर सदा अविवेक तथा अघ पास न आवे।
गुण शील तथा बल बुद्धि बढ़े हठ बैर विरोध घटे मिट जावे॥

(२) सबसों गहि पाणि मिले रघुनन्दन भेटि कियो सबको सुख भागी।
जब ही प्रभु पाँव धरे नगरी महँ तो छिन तें विपदा सब भागी॥

(झ) चकोर सवैया—इसमे ७ भगण और अन्त मे गुरु और लघु मिला कर २३ वर्ण होते हैं। भगण गुरु लघु
ऽ ऽ । ऽ ।

उदाहरण—

(१) सावन आय समीप लगो तब नारि के प्रान बचावन काज।
बादर दूत बनावन को कुशलात सदेस पठावन काज॥
—लक्ष्मण सिंह

(२) भासत ग्वाल सखी गन मे हरि राजत तारन में जिमि चन्द।
नित्य नयो रचि रास मुदा व्रज मे हरि खेलत आनन्द कन्द॥

(ञ) वागीश्वरी सवैया—इसमे ७ यगण अन्त में लघु और गुरु मिल कर २३ वर्ण होते हैं। यगण लघु गुरु
। ऽ ऽ । ऽ

उदाहरण—

सदा सत्य बोलौ हिये गाँठ खोलौ यही योग्य है मानवी गात को।
करौ भक्ति साँची महा प्रेम राँची बिसारौ न त्रैलोक्य के तात को॥

(ट) मुक्तहरा—आठ जगण अर्थात् २४ वर्णों का यह सवैया होता है।

जगण।

। । ऽ

उदाहरण—

(१) भले दृग स्यामल औ रतनार सुहावत जद्यपि तेज जनाय।
तरु इनमे बिलसै वुही चारु प्रिया के कटाच्छन की समताय॥
—सत्यनारायण 'कविरत्न'

(२) प्रसन्न सदा शिव हों तुरतै जन पै सब भाषत वेद पुरान।
करै नित भक्तन को भवमुक्त हरैं जन के सब क्लेश महान॥

(ठ) अरसात सवैया—सात भगण और अन्त मे एक रगण मिलाकर २४ वर्ण होते है।

भगण रगण

ऽ । । ऽ । ऽ

उदाहरण—

(१) जान सका वह क्यो न मुझे कहते सब हैं वह है सब जानता।
है नित ही रहता उर मे फिर क्यों न मुझे वह है पहचानता॥
—गोपालशरण सिंह

(२) 'आलम' जौन से कुजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यों करै।
नैननि मे जे सदा रहते, तिनकी अब कान कहाँ की सुन्यों करै॥
—आलम

(ड) वाम सवैया—सात जगण और एक यगण अर्थात् २४ वर्णों का यह सवैया होता है। इसके अन्य नाम 'मजरी', 'मकरन्द' और 'माधवी' भी है।

ज ग ण य ग ण

। ऽ । । ऽ ऽ

उदाहरण—

(१) अकेला ही है मुनि को यह बाल तऊ भयभीत न रंच लखावै।
मनौ कुलहा रघुवश को चारु दुरयो जिम नेह लता उलहावै॥
—सत्य नारायण कविरत्न

(२) चढ़ै गज बाजि सु पीनस आदि जु बाहन राजत केर बखाने।
लहै भलि वाम अरु धन धाम तु काह भयो बिनु रामहिं जाने॥

(ढ) कुन्दलता सवैया—इसके प्रत्येक चरण मे १२ और १४ के विराम से ८ सगण और दो लघु के क्रम से २६ वर्ण होते हैं। इसके अन्य नाम 'सुख' 'सुखद' और 'किशोर' भी है। सगण लघु लघु
। । ऽ । ।

उदाहरण—

(१) जग में नर जन्म दियो प्रभु ने मृदु भाषत सुराखत लाजह।
सत कर्म करै सत वृत्त बनै, समरत्थ रहै नित ही पर काजह॥

(२) निज बालक बेस ही में गिरि के सम गौरवता की छटा छिटकावत।
तप धारी किधौ यह दर्प लसै अथवा वर वीरता को मद आवत॥

१३—घनाक्षरी, कवित्त अथवा मनहरण

लक्षण—इस छन्द के प्रत्येक चरण मे ३१ अक्षर होवे हैं। १६ और १५ पर यति होता है तथा अन्त में गुरु होता है। इसे कवित्त और मनहरण छन्द भी कहते हैं।

उदाहरण—

सच्चे हो पुजारी तुम प्यारे प्रेम मन्दिर के,
उचित नहीं है तुम्हे दुःख से कराहना।
करना पड़े जो आत्मत्याग अनुरागवश,
तो तुम सहर्ष निज भाग्य को सराहना॥

प्रीति का लगाना कुछ कठिन नही है सखे,
किन्तु कठिन है नित नेह का निबाहना ।
चाहना जिसे है तुम्हें चाहिए सदैव उसे,
तन-मन प्राण से प्रमोद युत चाहना ॥

१४—रूपघनाक्षरी

लक्षण—इसमें ३२ अक्षर होते हैं । १६, १६ पर यति होता है । अन्त में गुरु लघु ।

उदाहरण—

(१) जान गया जान गया कौन हो सुजान तुम,
तुम्हें पहचान गया मत बतलाओ तुम ।
खोल दो नयन मत मुझे तरसाओ और,
सुख सरसाओ, प्रेम सुधा बरसाओ तुम ।
छिप कर जाने अब पाओगे कदापि नहीं,
जाओ या न जाओ फिर आओ या न आओ तुम ।

(२) नगर से दूर कुछ गाँव की सी बस्ती एक,
हरे-भरे खेतों के समीप अति अभिराम ।
जहाँ पत्र जाल अन्तराल से झलकते हैं,
लाल खपरैल श्वेत छज्जों के सँवारे धाम ॥
—रामचन्द्र शुक्ल

१५—कृपाणघनाक्षरी

लक्षण—प्रत्येक चरण मे ३२ वर्ण होते हैं, प्रत्येक आठवे वर्ण पर यति होती है । कभी अन्त के तीन वर्ण लघु गुरु लघु होते है और कभी अन्त के तीन वर्ण गुरु गुरु और लघु होते हैं ।

उदाहरण—

(१) दस बार बीस बार, बरजि दई है जाहि,
एते पै न माने जौ तै, जरन बरन देव ।
कैसे कहा कीजै कछू, आपनो करो न होय,
जाके जैसे दिन ताहि, तैसेई भरन देव ।।

—ठाकुर

(२) देखकर तेरी मंजु, मन्द-मन्द मुस्कान,
चारु चपला का जहाँ, आता मन में है ध्यान ।
यह वरदान दे कि बैठ के वहीं सदैव,
सुख से करूँ मै तेरी, सुषमा सुधा का पान ।।

—गोपालशरण सिंह

प्रायः इस छन्द में वीर रस की अभिव्यक्ति की जाती है । यदि इसके प्रत्येक चरण में नकार का प्रयोग किया जाय, तो अतीव लालित्य से पूर्ण और कर्ण-मधुर हो जाता है । जैसे—

देखि कालिका को जंग, सब होय जात दंग,
मति कबिहू की पंग, नहीं सकत बखान ।
कहूँ देखो न जहान, नहि परो कछू कान,
ऐसो युद्ध भो महान, महा प्रलय लखान ।।
यातुधान कुलहान, देखि देव हरखान,
मन मुदित महान, हने तबल निसान ।
जब झमकि झमकि पग ठमकि ठमकि,
चहुँ लमकि लमकि, काली भारी किरपान ।।

१६—देवघनाक्षरी

लक्षण—प्रत्येक चरण में ८, ८, ८, ९ के विराम से ३३ वर्ण होते हैं । अन्तिम तीन वर्ण लघु होते हैं ।

उदाहरण—

(१) झिल्ली झनकारै पिक, चातक पुकारै बन,
मोरनि गुहारै उठे, जुगनू चमकि चमकि।
घोर घन कारे भारे, धुरवा धुरारे धाम,
धूमनि मचावै नाचै, दामिनी दमक दमक॥
—जसवन्त सिंह

(२) कै तो निज गेह कै नरेस गेह पावै छवि,
अनत न जावै ठौर, दो ही ये धरन धरन।
मच्छर तौ नाहिं तौ जगन्तर मे फेरी देयँ,
स्वान तौ नहीं हैं, फिरै घूमत घरन घरन॥

१७—आर्या

लक्षण—जिसके पहले और तीसरे चरण मे १२ और दूसरे मे १८ तथा चौथे मे १५ मात्राएँ हो।

उदाहरण—

रामा रामा रामा—१२ मात्रा
आठौ यामा जपौ यही नामा। १८ मात्रा
त्यागौ सारे कामा,—१२ मात्रा
पै हो बैकुण्ठ विश्रामा—१५ मात्रा

१८—अनुष्टुप

लक्षण—इसके प्रत्येक चरण मे ८ अक्षर होते है। प्रत्येक चरण का पाँचवाँ अक्षर लघु, छठा दीर्घ और आठवाँ दीर्घ या गुरु हो। सातवाँ अक्षर पहले और तीसरे चरण मे गुरु और दूसरे तथा चौथे चरण मे लघु होता है। भिखारीदास ने इसकी गणना मुक्तक छन्दो मे की है। फारसी मे इस छन्द को मुस्तस्ना और अंग्रेजी मे Exception कहते हैं।

उदाहरण—

राम रामेति रामेति,
रमे रामे मनोरमे।
सहस्र नाम तुल्यं,
राम नामे वरानने ॥

१६—प्रहर्षिणी

लक्षण—[म, न, ज, र, ग] ३ और १० पर यति। १३ वर्ण।

मगण,	नगण,	जगण,	रगण	गुरु
SSS	।।।	।S।	S।S	S

उदाहरण—

मानो जू, रंग रहि प्रेम में तुम्हारे,
प्राणों के तुमहि अधार हौ हमारे।

२०—हरिणी

लक्षण—[ज, ज, ज, ल, ग] कुल ११ अक्षर एक चरण में होवे हैं।

जगण	जगण	जगण	लघु	गुरु
।S।	।S।	।S।	।	S

उदाहरण—

जु राम लगा मन नित्य भजै।
निकाम रहैं सब काम तजै ॥
बसै तिनके हिय में सुखदा।
मनोहरिणी छवि राम सदा ॥

२१—स्रग्धरा

लक्षण—[म, र, भ, न, य, य, य] ७, ७, ७ पर यति, एवं २१ वर्ण होवे हैं।

मगण	रगण	भगण	नगण	यगण	यगण	यगण
SSS	SIS	SII	III	ISS	ISS	ISS

उदाहरण—

(१) नाना फूलों फलों से, अनुपम जग की, वाटिका है विचित्रा ;
भोक्ता हैं सैकड़ों ही, मधुप शुक तथा कोकिला गान शीला।
कौवे भी हैं अनेकों, परधन हरने में सदा अग्रगामी ;
कोई है एक माली, सुधि इन सबकी, जो सदा ले रहा है ॥

(२) होवे सारी प्रजा को, सुख बलयुत तो, धर्म धारी नरेशा।
होवे वर्षा समै पै, तिलभर न रहै, व्याधियों का अंदेशा ॥

२२—मौक्तिकदाम या मोतियादाम

लक्षण—प्रत्येक चरण में चार जगण के क्रम से १२ वर्णों का यह छन्द होता है।

ज	ग	ण
I	S	I

उदाहरण—

(१) बड़े जन को नहि मांगन जोग।
फबै छल साधन में लघु लोग ॥—देवीप्रसाद 'पूर्ण'

(२) गये तहँ राम जहाँ निज मात।
कही यह बात कि है बन जात ॥
कछू जनि जी दुःख पावहु माइ।
सो देहु अशीष मिलौ फिरि आइ ॥ —केशव

(३) ऊँचौ रघुनाथ धरें धनु हाथ।
विराजत सानुज जानकि साथ ॥

२३—चामर

लक्षण—प्रत्येक चरण में रगण, जगण, रगण, जगण और रगण के क्रम से १५ वर्ण होते हैं और आठवें अक्षर पर यति होती है।

रगण	जगण	रगण	जगण	रगण
ऽ । ऽ	। ऽ ।	ऽ । ऽ	। ऽ ।	ऽ । ऽ

उदाहरण—

(१) ताहि पूछि औ बताय, लोग भूल ही करैं।
सो प्रसग लाय व्यर्थ, बाद माहि ते परैं॥

—बुद्धिचरित

(२) आइयो कुरग एक, चारु हेम हीर को।
जानकी समेत चित्त, मोहि राम वीर को। —केशव

२४—गीतिका

लक्षण—यह २० अक्षर का कृति जाति का छन्द है। इसका अन्य नाम मुनिशेखर भी है। इसके प्रत्येक चरण मे अक्षर निम्न क्रम से रखे जाते हैं एव १२, ८ पर यति होती है।

सगण	जगण	जगण	भगण	रगण	सगण	लघु	गुरु
।।ऽ	।ऽ।	।ऽ।	ऽ।।	ऽ।ऽ	।।ऽ	।	ऽ

उदाहरण—

(१) कोउ आज राज समाज में बल, शम्भु को धनु कर्षि है?
पुनि श्रौण के परिमाण तानि सो, चित्त में अति हर्षि है॥

—केशव

(२) पद! मो शरीरहि राम के कल, धाम को लय धावहू।
कर! बीन लै अति दीन ह्वै नित, गीत कान सुनावहू॥

(३) दशकंठ रे शठ छाँड़ि दे हठ, बार बार न बोलिये।
अब आजु राज समाज में बल, साजु चित्त न डोलिये॥

—केशव

२५—दोधक

लक्षण—प्रत्येक चरण में ३ भगण और २ गुरु के क्रम से ११ अक्षरों

का यह छन्द बनता है । वाणी भूषणकार ने इसे 'बन्धु' के नाम से भी पुकारा है ।

भगण भगण भगण ग ग
S I I S I I S I I S S

उदाहरण—

(१) पांडव की प्रतिमा सम लेखौ ।
अर्जुन भीम महामति देखौ ।—केशव

(२) भागु न गे दुहि दे नदलाला ।
पाणि गहे कहती व्रजबाला ।

(ब) मात्रिक छन्द (सम)

२६—चौपाई

लक्षण—प्रत्येक चरण मे १६ मात्राएँ होती हैं और अन्त मे जगण एव तगण न हो ।

"सोरह क्रमन जतन चौपाई, सुनहु तासु गति अब मन लाई ।"

उदाहरण—

(१) हाथ लिये बल्कल सुकुमारी । ठाढ़ी भयी लाज उर भारी ॥
पहर न जानत मन अकुलानी । राम ओट लखि कह मृदुबानी ॥

(२) जब तें राम ब्याहि घर आये । नित नव मंगल मोद बढ़ाये ॥
भुवन चारि दस भूधर भारी । सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी ॥

२७—राधिका

लक्षण—"तेरह नौ पर पडे तो राधिका है ।" कुल २२ मात्राएँ होती हैं । १३ और ९ पर यति होती है ।

उदाहरण—

(१) सब सुधि बुधि गइ क्यों भूल, गई मति मारी ।
माया को चेरो भयो, भूलि असुरारी ॥

(२) बैठी है बसन मलीन, पहन इक बाला।
पुरइन पत्रों के बीच, कमल की माला॥
(३) उस मलिन बसन में अंग, प्रभा दमकीली।
ज्यों धूसर नभ में चन्द्र, कला चमकीली॥

—जयशंकर प्रसाद

२८—रोला

लक्षण—"ग्यारह तेरह यती, कुल चौबीस कहु रोला।" २४ मात्राएँ होती है तथा ११ और १३ पर यति होती है। अन्त मे दो गुरु अथवा दो लघु पडते हैं।

उदाहरण—

(१) मोहन मदन गुपाल, राम प्रभु शोक निवारन।
सोहत परम कृपाल, दीन जन पाप उधारन॥
(२) शान्त नदी का स्रोत, बिछा था अति सुखकारी।
कमल कली का नृत्य, हो रहा था मनहारी॥
बोल उठा जो हंस, देखकर कमल कली को।
तुरत रोकना पड़ा, गूँज कर चतुर अली को॥
हिली आम की डाल, चला ज्यों नवल हिंडोला।
आह कौन है पंचम, स्वर में कोकिल बोला॥

२६—सरसी या कबीर

लक्षण—"सोलह-ग्यारह अन्त गाल रचि सरसी छन्द सुजान।" प्रत्येक चरण में २७ मात्राएँ, १६ और ११ पर यति तथा अन्त मे गुरु-लघु हो।

उदाहरण—

(१) काम क्रोध मद लोभ मोह की, पचरंगी कर दूर।
एक रंग तन मन वाणी में, भर ले तू भरपूर॥
प्रेम पसार न भूल भलाई, वैर विरोध बिसार।
भक्तिभाव से भज शंकर को, भक्ति दया उर धार॥

(२) सत्य तेज है, प्रेम रूप है, धर्म रग रमणीय।
सयम शक्ति शांति छवि अनुपम, यश प्रकाश कमनीय ॥

पजाब मे जैसे कोरडा छन्द प्रसिद्ध है उसी प्रकार उत्तर प्रदेश मे होली के दिनो मे कबीर की शुद्ध वाणी के पलटे जो कबीर गाये जाते हैं वे इसी ढंग के होते हैं। जैसे—

आपस में ना करै मुकदमा, घूस हजारों देय।
डिगरी पावै खरचा जोड़ै, लम्बी साँसें लेय ॥
बहू बेटियाँ मात पिता की, कही न मानै बात।
पढ़े गुने बिन यही फजीहत, दाऊजी अकुलात ॥

इसे कबीर या समुन्दर छन्द भी कहते हैं।

३०—हरिगीतिका

लक्षण—२८ मात्राएँ होती हैं, १६ और १२ पर यति तथा अन्त में लघु-गुरु होना चाहिए।

षोडश-द्वादश अन्त लगकरि, गाइये हरिगीतिका

उदाहरण—

(१) हो द्रवित करके श्रवण उसकी प्रार्थना करुणा भरी।
देने लगे निज कर उठा के सान्त्वना उसको हरी ॥
भद्रे रुदन कर बन्द हा हा, शोक को मन से हटा।
यह देख तेरी दुःख घटा जाता, हृदय मेरा फटा ॥ —गुप्त जी

(१) ससार भवनिधि तरण को नहि, और अवसर पाइये।
शुभ पाय मानुष जन्म दुर्लभ, राम सीता गाइये ॥

(३) मुख नागरिन के राज ही कहुँ फटिक महलन संग मे।
विकसत कोमल कमल मानहु अमल गंग तरंग मे ॥—भूषण

तुलसी, सूर, केशव, भूषण और मैथिलीशरण गुप्त का यह बहुत प्रिय छन्द रहा है।

३१—चौपइया अथवा चवपैया

लक्षण—प्रत्येक चरण में ३० मात्राएँ होती हैं। १० ८-१२ पर यति अत मे दो या एक गुरु होना चाहिए। इसे 'चतुष्पदी' भी कहते हैं।

उदाहरण—

(१) माता पुनि बोली, सो मति डोली, तजहु तात यह रूपा।
कीजै शिशु लीला अति प्रियशीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि वचन सुजाना, रोदन ठाना, हुइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं, हरिपद पावहिं, ते न परहि भवकूपा॥

(२) एकै तुम दोऊ और न कोऊ, एकै नाम कहायो।
आयुर्बल खूट्यो धनुष जु टूट्यो, पै तन मन सुख पायो॥

३२—वीर (आल्हा)

लक्षण—३१ मात्राएँ होती हैं। यति ८-८-१५ पर पड़ती है, अन्त में गुरु-लघु पडता है। जगनिक ने अपने आल्ह-खड की रचना इसी छन्द मे की है। आधुनिक काल मे आनन्द कुमार ने 'अंगराज' काव्य में इसका प्रयोग किया है।

उदाहरण—

(१) मुर्चा लौटो, तब नाहर को, आगे बढ़े पिथौरा राय।
नौ सै हाथिन, के हलका माँ, इकले घिरे कनौजी राय॥
सात लाख से चढ़्यो पिथौरा, नदी बेतवा के मैदान।
आठ कोस लौ, चले सिरोही, नाही सूझत अपुन बिरान॥

—जगनिक

(२) दिया कृष्ण ने दुर्योधन को निज सेना रूपी उपहार।
और निरायुध स्वयं पार्थ का रथ सारथ्य किया स्वीकार॥

—'अंगराज'

इसे मात्रिक सवैया भी कहते हैं।

३३—गीतिका

लक्षण—२६ मात्राएँ होती है, १४ और १२ पर यति। तीसरी, दसवी, सत्रहवी और चौबीसवी मात्राएँ लघु और अन्त मे रगण (ऽ । ऽ) होना चाहिए।

उदाहरण—

(१) मातृ भू सी मातृ भू है, अन्य से तुलना कहीं।
यत्न से भी ढूंढ़ने पर, मिल हमें सकती नहीं॥

(२) पाय के नर जन्म प्यारे, कृष्ण के गुण गाइये।
पाद पंकज हीय में धरि, जन्म को फल पाइये॥

(३) कौन नीलोज्वल युगल ये, दो यहाँ पर खेलते।
है झड़ी मकरन्द की, अरविन्द में ये झेलते॥
क्या समय था ये दिखाई पड़ गये कुछ तो कहो।
सत्य क्या जीवन शरद के ये प्रथम खंजन अहो॥

—प्रसाद

गीतिका छद वर्णिक वृत्त के अतर्गत भी होता है।

लक्षण—सगण, जगण, जगण, भगण, रगण, सगण, अन्त में लघु गुरु १२, ८ पर यति।

उदाहरण—

(१) पद मो शरीरहिं राम के कल धाम की लय धावहू।
कर बीन लै अति दीन है नित गीत कान सुनावहू॥

(२) दशकंठ रे शठ छाँड़ि दे हठ, बार बार न बोलिये।
अब आजु राज समाज में बल, सा जु चित्त न डोलिये॥

—केशव

अर्धसम

३४—बरवै

लक्षण—विषम अर्थात् पहले और तीसरे पदों में १२ मात्राएँ और

अथ दूसरे और चौथे पदों में ७ मात्राएँ होती हैं। सम पदों के अन्त में जगण (। ऽ ।) या तगण (ऽ ऽ ।) पड़ता है। इसे ध्रुव और कुरंग छन्द भी कहते हैं।

उदाहरण—

(१) कवि समाज को बिरवा, चले लगाइ।
सींचन की सुधि लीजो, मुरझि न जाइ॥

(२) सबसे मिलकर रहमन, बैर बिसार।
दुर्लभ नर तनु पाकर, कर उपकार॥

३५—दोहा

लक्षण—विषम [illegible] में १३ मात्राएँ और सम (२—४) पदों में ११ मात्राएँ होती हैं। विषम पदों के आदि में जगण (। ऽ ।) नहीं होना चाहिए। सम पदो के अन्त में लघु पड़ता है।

उदाहरण—

(१) राम नाम मणि दीप धर, जीह देहरी-द्वार।
तुलसी बाहर भीतरहु, जो चाहत उजियार॥

(२) बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौंहनि हँसै, दैन कहै नटि जाय॥

३६—सोरठा

लक्षण—यह दोहा का उलटा होता है। विषम (१—३) चरणो में ११ मात्राएँ और सम (२—४) चरणों में १३ मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण—

(१) रहिमन मोहि न सुहाय, अमी पियावत मान बिन।
बरु विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो॥

(२) जेहि सुमिरत सिधि होय, गणनायक करिवर बदन ।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि राशि शुभ गुण सदन ॥

३७—उल्लाला (अ)

लक्षण—विषम (१—३) चरणो में १५ और सम (२—४) चरणों में १३ मात्राएँ होती हैं ।

उदाहरण—

वह जाति ध्वंस हो जायगी, जो दिन दिन है छीजती ।
होगा न जाति का हित, बिना बने जाति हित व्रत व्रती ॥

३८—उल्लाला (आ)

लक्षण—प्रत्येक चरण में १३ मात्राएँ होती हैं ।

उदाहरण—

अविरल होती वृष्टि थी, सृष्टि दृष्टि आती न थी ।
भूरि भयानकता भरी, भूमि भूलि भाती न थी ॥

३९—छप्पय

लक्षण—प्रथम ४ चरणों मे रोला और अन्त के २ चरणो मे उल्लाला रहता है । यह मिश्रित सयुक्त छन्द है तथा प्रायः वीरादि रसों के लिए अधिक उपयुक्त है ।

उदाहरण—

(१) जग में अब भी गूँज रहे हैं गीत हमारे ।
शौर्य, वीर्य, गुण हुए न अब भी हमसे न्यारे ॥
रोम, मिश्र, चीनादि काँपते रहते सारे ।
यूनानी तो अभी अभी हमसे हैं हारे ॥
सब हमें जानते हैं सदा भारती हम हैं अभय ।
फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय ॥

(२) जिसकी रज में लोट लोट कर बड़े हुए हैं।
घुटनों के बल सरक सरक कर खड़े हुए हैं॥
परमहंस सम बाल्यकाल मे सब सुख पाये।
जिसके कारण धूल भरे हीरे कहलाये॥
हम खेले कूदे हर्षयुत, जिनकी प्यारी गोद मे।
हे मातृभूमि तुझको निरख मस्त क्यों न हों मोद में॥

४०—कुण्डलिया

लक्षण—शुरू मे दोहा (१३+११=२४ मात्राएँ) फिर रोला छन्द (११+१३=२४ मात्राएँ) जोड़कर कुण्डलिया छन्द बनाया जाता है। दोहे के चौथे चरण को रोला के प्रारम्भ मे रखते हैं। हिन्दी मे गिरधर कविराय की कुण्डलियाँ प्रसिद्ध हैं, यों तुलसीदास और केशव ने भी लिखा है।

उदाहरण—

(१) मेरी भवबाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जातन की झाँई परे, श्याम हरित दुति होय॥
श्याम हरित दुति होय, कटै सब कलुष कलेशा।
मिटै चित्त को भरम, रहै नहि कछुक अंदेसा॥
कह पठान सुलतान, काटु यम दुःख की बेरी।
राधा बाधा हरहु, हहा बिनती सुनु मेरी॥

दौलत पाय न कीजिये सपने में अभिमान।
चंचल जल दिन चारि को ठाँउ न रहत निदान॥
ठाँउ न रहत निदान जियत जग में जस लीजै।
मीठे वचन सुनाय, विनय सबही की कीजै॥
कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घर तौलत।
पाहुन निसिदिन चारि रहत सबही के दौलत॥

४१—तोमर

प्रत्येक चरण मे १२ मात्राएँ होती हैं, अंत मे गुरु और लघु होता है। यह छंद वीर रस के वर्णन मे अधिक उपयोगी है।

उदाहरण—

| | | | | S S S | | | | | | | | S S |

(१) रिपु परम कोपे जानि । प्रभु धनुष सर संधानि ॥
छाँड़ें विपुल नाराच । लगे कटन विकट पिसाच ॥

(२) तब चले बाण कराल । काँपती सेना विसाल ॥
रुधिर से भू का भाल । रंग दीनो रंग लाल ॥

(स) मुक्तक छन्द

इस प्रकार के छदो के प्रत्येक चरण मे केवल अक्षरो की संख्या की गणना की जाती है। मात्रा तथा वर्णों का कोई क्रम नही होता। सात भेद हैं, जिनमें प्रमुख दो हैं जो नीचे दिये जाते हैं।

४२—मनहरण

इसमे १६ और १५ वर्णों के विराम के साथ ३१ वर्ण होते हैं और अंत में गुरु होता है।

उदाहरण—

S S | | S S | S S | | S S S S S

(१) पीवै नित भंगै रहै प्रेतन के संगे ऐसे, १६ वर्ण
पूछतो को नंगे जो न गंगै सीस धरतो। १५ वर्ण

(२) उभकि उभकि पद कंजनि के पंजनि पै,
पेखि पेखि पाती छाती छोहन छुवै लगी।
हमको लिख्यो है कहाँ, हमको लिख्यो है कहाँ,
हमको लिख्यो है कहाँ, कहनि सबै लगी॥

४३—देवघनाक्षरी

इसमे ८, ८, ८ और ९ अक्षरों के विराम से ३३ वर्ण होते हैं और अंत में ३ वर्ण लघु होते हैं।

उदाहरण—

(१) झिल्ली झनकारैं पिक, चातक पुकारैं बन,
मोरनि गुहारैं उठे, जुगनू चमकि चमकि।
घोर घन कारे भरि, धुरवा धुरारे धाम,
धूमनि मचावै नाचै, दामिनी दमकि दमकि।।

इन छंदों को कवित्त सवैया छन्द भी कहते हैं जिसका प्रयोग भक्ति-कालीन कवि तुलसीदास ने अपने ग्रंथ 'कवितावली' मे किया तथा रीति-कालीन एवं आधुनिक काल के प्रारम्भिक कवियो की रचनाओ मे इस छद का साधारणतया प्रयोग मिलता है। जैसे—तुलसी, केशव, भूषण, मतिराम, पद्माकर, भारतेन्दु, हरिऔध, रत्नाकर, गोपालशरण सिंह, तथा नाथूराम 'शंकर' आदि। वस्तुतः यह छन्द चारण पद्धति का छद है।

मात्रिक छन्द (सम)

४४—दिक्पाल

लक्षण—प्रत्येक चरण मे १२-१२ के विराम से २४ मात्राएँ होती हैं। ५ वे और १७ वें स्थान पर लघु वर्ण होता है।

उदाहरण—

(१) प्रह्लाद जानता था तेरा सही ठिकाना।
तू ही मचल रहा था मंसूर की रटन में।।
आखिर चमक पड़ा तू गाँधी की हड्डियों में।
मैं था तुझे समझता सुहराब पीलतन में।

—रामनरेश त्रिपाठी

(२) एक समय वह भी था प्यारी जब तू आती।
हर्ष हास्य आमोद मौज आनन्द बढ़ाती ॥
होते घर-घर बन-बन मंगलाचार बधाई।
चाव-चाव से होती थी तेरी पहुनाई ॥

(३) रे मान बात मेरी मायादि त्याग दीजै।
सब काम छाँड़ि मीता, इक राम नाम लीजै ॥

इसका दूसरा नाम 'मृदुगति' भी है।

४५—रूपमाला

लक्षण—प्रत्येक चरण मे १४-१० के विराम से २४ मात्राएँ होती हैं। अन्त मे क्रमशः गुरु और लघु होना चाहिए।

उदाहरण—

(१) वेणु बीन मृदंग बाजत, दुन्दुभी बहुभेव।
भाँति भाँतिन होत मगल, देव से नर देव ॥

—केशवदास

(२) जोरि कर मुनि पाय पकज करी दण्ड प्रणाम।
पूजिबे को कुसुम लावै, लही आयसु राम ॥

(३) जातु ही बन बालिही गल बाँधिके बहुतन्त्र।
धामहीं किन जपत कामद, राम नाम सुमन्त्र ॥

इसको 'मदन' नाम से भी पुकारा जाता है।

४६—काव्य

लक्षण—११-१३ मात्रा की यति से प्रत्येक चरणमें २४ मात्राएँ होती हैं। प्रत्येक चरण की ग्यारहवी मात्रा लघु होनी चाहिए।

उदाहरण—

(१) ऊँचे-ऊँचे कलश, दूर ही सों अति भ्राजत।
चन्द्र सूर की किरन, परै दुति-दुति चमकत ॥

(२) राम कृष्ण गोविन्द, भजे पूजत सब आसा ।
इहाँ प्रमोद लहन्त, अन्त बैकुण्ठ निवासा ॥

४७—त्रिभंगी

लक्षण—प्रत्येक चरण मे १०-८-८-६ के क्रम से ३२ मात्राएँ होती हैं और अन्त में गुरु (ऽ) परतु जगण (। ऽ ।) वर्जित है । इसी को शुद्ध ध्वनि और हल्लास छंद भी कहा गया है ।

उदाहरण—

(१) सुर काज सँवारन, अधम उधारन, दैत्य निदारन टेक धरे ।
प्रगटे गोकुल में हरि छिन छिन मे, नन्द हिये में मोद भरे ॥

(२) जब-जब धरि वीणा, प्रगट प्रवीना, बहु गुण लीना, सुख सीता ।
पिय जियही रिझावै, दुखनि भजावै, विविध बजावै गुणगीता ॥

(३) क्षीरोदधि गंगा, बिमल तरंगा, सलिल अभंगा सुख संगा ।
भरि कंचन झारि, धार निकार, तृषा निवारी, हित चगा ॥

४८—अरिल्ल

लक्षण—११-१० पर यति के क्रम से प्रत्येक चरण में २१ मात्राएँ होती हैं, लेकिन यदि यति न हो तो दोष नही ।

उदाहरण—

(१) अच्छा देखूँ मुझे छोड़कर तुम कहां,
जा सकते हो ? मैं भी आती हूँ वहीं ।
जंगल सागर या पहाड़ पर तुम रहो,
तुम से आकर आज मिलूँगी मैं वहीं ॥

(२) यह भी कोई हँसी है, कि रुखसत का लेके नाम,
सौ बार बैठे बैठे, हमें तुम रुला चले ।

(द) मुक्त छन्द

इस प्रणाली के छंद का तात्पर्य है जिसमें न मात्रा का बंधन हो, न गण का, और न वर्ण का, बंधन है तो मात्र लय का। यह लय भी छन्द की लय से भिन्न एक प्रकार की स्वाभाविक लय होती है। इस छंद के चरण भाव-लय के अनुरूप कहीं छोटे, कहीं बड़े हो सकते हैं। सर्वप्रथम महाकवि 'निराला' ने इस प्रणाली में अपनी प्रसिद्ध कविता 'जूही की कली' रची थी। और आजकल तो प्रयोगवादी और नई कविता के कवियों का तो प्रिय और एक मात्र छन्द यही हो गया है। इसके आश्रय को पाकर यह छन्द-प्रणाली यथेष्ट फल-फूल रही है।

उदाहरण—

(१) विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी,
स्वप्न मग्न अमल कोमल तनु तरुणी
जूही की कली
दृग बन्द किये शिथिल पत्रांक में

(२) डाल कर परदा कुहासे का
यह शरद की साँझ दूलहन सी,
गांव के सिहरे सिवानों पर
पालकी से सहम कर उतरी।

(३) चाँदनी का जिस्म टूटा जा रहा है
चाहत । शबनम
किसी अभिसारिका के मधु कलश में
मुँह छिपाना
रात के पिछले पहर तक
प्राण कितनी बेबसी है।

काव्य के गुण

गुण का अर्थ है विशेषता, दोष का अभाव, उत्तमता, आकर्षक अथवा शोभाकारी धर्म। काव्य शास्त्र में इसका तात्पर्य दोषाभाव अथवा काव्य की शोभा करने वाले धर्म से लिया जाता है। आचार्य भरत मुनि ने कहा है—"दोष विपयर्य ही गुण है।" मम्मट—"गुण रसरूप अगी का धर्म और इसके उत्कर्ष का कारक होता है।" तथा आचार्य वामन कहते हैं कि—"गुण काव्य का शोभाकारक धर्म और आनन्दवर्द्धन रस के आश्रित रहने वाला धर्म है।" दण्डी ने गुण को भावात्मक समझकर काव्य शोभाकारी बताया है। आनन्दवर्द्धन और विश्वनाथ ने गुणो को। साश्रित माना है उसकी स्वतन्त्र सत्ता नही। वास्तव में गुण को प्रतिष्ठित प्रदान करने वाले आचार्य वामन है।

भरत मुनि ने—श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पदसौकुमार्य, अर्थ व्यक्ति, उदारता और कान्ति नामक दस गुणो का उल्लेख किया है। दण्डी ने भी दस ही गुण माने हैं लेकिन भरत के गिनाये कुछ गुणों जैसे समाधि, कान्ति आदि का अपना भिन्न अर्थ बताया है। वामन ने शब्द और अर्थ के आधार पर प्रत्येक गुण के दो भेद कहे हैं। इस प्रकार गुणों की सख्या बीस पहुँचती है। भोज ने भरत के बताये १० गुणो में १४ गुण और जोड़कर २४ की सख्या मानी है। वे गुण हैं-(१) ओजत्व, (२) प्रेयस, (३) सुशब्दता, (४) सूक्ष्मता, (५) गम्भीरता, (६) विस्तार, (७) सक्षेप, (८) सम्मितत्व, (९)भाविक, (१०) गति, (११) रीति, (१२) उक्ति, (१३) प्रौढ़ि, (१४) उदाहरण। इनके अतिरिक्त शब्द गुण, अर्थ गुण और प्रसग गुण के आधार पर २४ गुण के उप

१—एत एव विपर्यस्ता गुणः काव्येषु कीर्तिता :—भरतमुनि—नाट्यशास्त्र १७—६५

२२—काव्य शोभायाः कर्तारोधर्मागुणा :—आचार्य वामन

भेद करके गुण की सख्या ७२ भोज ने मानी है। अग्नि पुराण में काव्य के महती छाया उत्पन्न करने वाले भावात्मक १६ गुण माने है (१) श्लेष (२) लालित्य (३) गाम्भीर्य (४) सुकुमार्य (५) औदार्य (६) सत्य (७) योगबी (८) माधुर्य (६) संविधान (१०) कोमलता (११) उदारता (१२) प्रौढ़ि (१३) सामयिकत्व (१४) प्रसाद (१५) सौभाग्य (१६) यथासख्य (१७) प्रशस्यता (१८) पाक (१६) राग इनमे से १--७ तक शब्द गुण ८--१३ तक अर्थ गुण और १४-१६ तक उभय गुण की कोटि मे रखे जाते है। आचार्य कुन्तक ने औचित्य और सौभाग्य नामक अनिवार्य सामान्य गुण एव माधुर्य प्रसाद, लावण्य और आभिजात्य नामक विशिष्ट गुण माने हैं। आनन्दवर्द्धन ने चित्त की ३ अवस्थाये मानी हैं, १ द्रुति २ क्षीप्ति और ३ व्यापकत्व। इसीके आधार पर क्रमशः माधुर्य ओज और प्रसाद तीन गुण माने हैं। वामन ने इन्ही तीन गुणों में दसों गुणों का समावेश कर दिया है। मम्मट और विश्वनाथ ने भी प्रसाद माधुर्य और ओज गुण को मान्यता दी है जिसे हिन्दी के आचार्यों ने भी स्वीकार किया है।

अब हम सक्षेप में कतिपय प्रमुख गुणो के विषय मे विचार व्यक्त करेंगे।

(१) श्लेष—इसका अर्थ है मेल जोल। भरत ने अनेक शब्दो, अर्थों और वर्णों के संघठन को और दण्डी ने गाढ़ बन्धता एव रचना के सघठन को श्लेष कहा है। श्लेष गुण श्लेष अलंकार से भिन्न है।

(२) अर्थ व्यक्ति—दण्डी के अनुसार जहाँ अभिप्रेत अर्थ की अभिव्यक्ति हो अर्थात् जब सम्पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति शब्दो और पदों के द्वारा हो जावे तब वहाँ यह गुण होता है।

(३) उदारता—इसका अर्थ है व्यापकता अथवा उत्कर्ष। इस गुण की अभिव्यक्ति के लिए मनोरम मजुल विशेषणों का प्रयोग करना चाहिये जिससे प्रतिपाद्य अर्थ मे उत्कर्ष की प्रतीति हो और उक्ति विशेष स्पष्ट हो जावे।

(४) समाधि—इसका अर्थ है मेल, जोड, एकाग्रता। भरत के अनुसार समाधि किसी रचना का वह विशिष्ट अर्थ है जिसे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति उप-

लब्ध करते है। दण्डी के अनुसार जहाँ लोक सीमा के अनुरोध से अन्य के धर्म का अन्यत्र आरोप किया जाता है वहाँ समाधि गुण होता है। २—मम्मट आदि ध्वनि सिद्धान्त के आचार्यों ने समाधि को स्वीकृति नही दी है। देव समाधि की अभिव्यक्ति यो तो दण्डी के अनुसार ही करते हैं लेकिन दोनो में एक विशेष अन्तर है कि दण्डी लोक सीमा का अनुरोध मानते जब कि देव लोक सीमा का उल्लघन। इस प्रकार समाधि वह गुण है जो किसी धर्म के अन्य धर्मों मे ठीक ढग से आरोपित करे।

(५) समता—भरत के अनुसार जब रचना में कठिन अर्थ व्यर्थ अति चूर्णपद अधिक न हो तब यह गुण होता हैं। इसका अर्थ है समानता और तुल्यता।

(६) कान्ति—भरत के अनुसार वह गुण है जिसके द्वारा मन की और कर्ण विषयक अह्लाद प्राप्त हो। दण्डी कहते हैं कि इस गुण में लौकिक गुण का अतिक्रमण नही होता वरन् जगत की कमनीयता की अभिव्यक्ति होती है। वामन कान्ति गुण के शाब्दिक और आर्थिक कान्ति नाम से दो रूप मानते हैं। इस शब्द का तात्पर्य है आभा, कमनीयता, शोभा, दीप्ति, उज्ज्वलता।

(७) सुकुमारता—जब कर्ण कटु और पुरुष एव कठोर वर्णों का त्याग तथा कोमल वर्ण की योजना के द्वारा सुकुमार भावना की अभिव्यक्ति होती है, तब यह गुण उत्पन्न होता है।

(८) प्रसाद—प्र + सद + धञ वर्णों से प्रसाद शब्द की व्युत्पति मानी गई हैं जिसका अर्थ है प्रसन्नता, प्राजलता, स्वच्छता एवं सुस्पष्टता। भरत—"जिसमें

१—अभियुक्तैऽविशेषस्तु योऽर्थस्यै वोपलभ्यते।
तेन चार्थेन सम्पन्न: समाधिः परिकीर्त्यते ॥ नाट्य शास्त्र १७-१०१

२—अन्य धर्मस्ततोऽन्यत्र लोकसीमानुरोधिना।
सम्यगाधीयते यत्र स समाधि. स्मृतो यथा ॥—काव्यादर्श—१ : ६३

सरलता, सहजग्राह्यता और स्वच्छता हो।" दण्डी--"वह शब्द प्रयोग जिसके, कारण अर्थ सुनते या पढ़ते ही समझ में आ जावे।" (२) वामन—"जो ओज का विरोधी और शिथिलताजन्य हो। ध्वनिवादी आचार्यों का कथन है कि हृदय मे भाव या अर्थ की व्याप्ति शीघ्र ही ऐसी हो जाती है जैसे सूखी लकडी में अग्नि अथवा साफ कपडे मे जल। हिन्दी के आचार्यों की मान्यता है कि प्रसाद गुण का निवास सरल, सहज और भावव्यजक शब्दावली में तथा अर्थ की निर्मलता और रोचकता में होती है।

(६) ओज—इस गुण के कारण मन में ओज, तेज, प्रताप, दीप्ति उत्साह, वीरता, आवेश आदि भावो का जन्म होता है। ओज गुण की उत्पति के लिए वर्गों के शुरू और तृतीय वर्ण सयुक्ताक्षर होने चाहिये एव टवर्ग तथा व और 'स' अक्षर का साथ ही दीर्घ सकार का प्रयोग। यह गुण वीर रस, वीभत्स और रौद्र रस की अभिव्यक्ति के लिये उपयुक्त है। इस गुण के विषय में विभिन्न आचार्यों का मत नीचे दिया जाता है—

(ग) "समासयुक्त किन्तु श्रवण सुखद एवं अर्थ गाम्भीर्ययुक्त पदावली ओजमयी होती है"—भरतमुनि

(ख) "समास बहुला पदावली ओज गुण से युक्त होती है।"—दण्डी

(ग) "ओज के लिये संयुक्ताक्षरो का सयोजन और अर्थ की प्रौढ़ता आवश्यक है।"—वामन

(घ) ओज गुण चित के दीप्त करता है—ध्वनिवादी आचार्य

(१०) सरसता, शिष्टता, संस्कृतता. मिठास, रोचकता माधुर्य के पर्याय है। माधुर्य गुण के समावेशसे श्रुति माधुर्य समटस रहितता, उक्तिवैचित्र्य, आर्द्रता, चित्तद्रवण, भावमयता और आह्लाद जैसे भावो की निष्पति होती है। विभिन्न आचार्यों के मत इस गुण के विषय मे इस प्रकार है:—

---

१ नाट्य शास्त्र—१७,६८

२ काव्या दर्श

"माधुर्य से श्रुतिमधुरता का तात्पर्य ग्रहण किया गया है।"—भरत मुनि।

(क) "माधुर्य का अर्थ है रसमयता।"—दण्डी।

(ख) "माधुर्य का अर्थ है समासराहित्य एव उक्तिवैचित्र्य।"—वामन।

(ग) "माधुर्य सहृदयो को द्रवित करने वाला गुण है।"—ध्वनिवादी आचार्य।

(ङ) "माधुर्य में आह्लादकता और शृङ्गार रस में द्रवित करने की विशेषता भी है।"—मम्मट।

(च) "कवर्ग, चवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, ण, और र अक्षर एवं अनुस्वारयुक्त वर्ण माधुर्य को उत्पन्न करते हैं।"—विश्वनाथ।

यह गुण शृङ्गार, करुण और शान्त रस के लिये अनुकूल होता है।

काव्य के दोष

काव्य को उत्कर्षता प्रदान करने के लिये जिस प्रकार रस, ध्वनि, गुण, अलकारादि की स्थिति आवश्यक होती है उसी प्रकार उसे दोष रहित होना भी अत्यन्त आवश्यक है। अनेक गुणो से युक्त होने पर भी एकाध दोष आ जाने पर कविता के वास्तविक आनन्द या रस की प्राप्ति मे बाधा पहुँचती है। जिस किसी वस्तु के कारण कविता के मुख्य अर्थ को समझने मे बाधा पहुँचती है अथवा उसके सौन्दर्य मे कमी आ जावे उसे दोष कहते हैं। कविता और मधुरता का बडा घनिष्ट सम्बन्ध है और मधुरता का तात्पर्य है रूप, रस, गुण से सम्पन्न सरसता से जो कि प्रत्येक कविता में अपेक्षित है। दोष का अर्थ है भूलि, त्रुटि, हानि, या रोग, यह हानि तीन प्रकार से होती है :—

(१) काव्य के रस अथवा आनन्द की अनुभूति मे विघ्न पडने से।

(२) रस की प्रतीति में विलम्ब, विघात और अवरोध के द्वारा।

(३) काव्य की श्रेष्ठता को नष्ट करने वाली किसी भी वस्तु के बीच मे आ पडने से।

काव्य के दोषो के विषय में भिन्न-भिन्न आचार्यो के मत नीचे दिये जा रहे हैं :—

(१) दोष वह पदार्थ है जो मुख्य अर्थ का अपकर्ष करता है अर्थात रस की हानि करता है।—विश्वनाथ—साहित्य दर्पण (७)।

(२) गुण का विपर्यस्त रूप दोष है—भरत मुनि नाट्य शास्त्र (१७, ९५)।

(३) सत्कवि दोष का प्रयोग नही करते तथापि क्या ललना की आंखो में अजन की कोई शोभा नही ? क्या गौर और सुन्दर मस्तक पर दिठौने का कोई मूल्य नही ? क्या गुण और दोष का वह सम्बन्ध नही जो चित्र और चौखटे का है ? भामह—काव्यालंकार (१, ५४-५९)।

(४) कवि कौशल के बल से सभी दोष सीमा का उल्लघन करके गुण बन जाते है।[१]—दण्डी—काव्यदर्श (३, १७९)।

(५) दोष के द्वारा उद्वेग उत्पन्न होता है।—[२] अग्नि पुराण (११,१)।

(६) दोष से काव्य सौन्दर्य की हानि होती है।—वमानाचार्य—काव्यालकार सूत्र (२, १२)।

(७) दोष से मुख्य अर्थ का अपकर्ष होता है।—मम्मट।

(८) दूषण सहित कवित्त से इसी प्रकार बचना चाहिये जिस प्रकार कृतघ्न प्रभु से।—केशवदास।

वेदो और उपनिषदो मे तो सत् और असत् का बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध बताया गया है बल्कि कही कही तो असत् से सत् की उत्पत्ति तक मानी गयी है।[३] इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी आचार्यों ने काव्य मे दोष आना युक्ति संगत नही माना है यह दूसरी बात है कि दोष के कारण किसी ने रस का अपकर्ष तो किसी ने अर्थ की हानि तो किसी ने सौन्दर्य का नाश देखा हो।

विश्व मे कोई ऐसी वस्तु नही जो पूर्ण निर्दोषिता का गर्व कर सके। सत-रज-तम से बनी सृष्टि गुण-दोष दोनो का आगार है। पन्त जी कदाचित् इसीलिये पुकार पड़े थे—

"दीन दुर्बल है रे ससार, इसी से दया क्षमा और प्यार", दीनता व दुर्बलता दोष होते हुये भी मानवोचित गुणो के अस्तित्व के कारण हैं। इस प्रकार जब मनुष्य मे ही दोष है तो उसकी कृतियाँ कैसे दोष-मुक्त हो सकती हैं। अलङ्कार, गुण, रीति, ध्वनि आदि के सम्बन्ध मे भले ही भारतीय आचार्य

---

(१) उत्क्रम्य दोषगणना गुण वीथी विगाहते—काव्यादर्श।

(२) उद्वेगजनको दोष —अग्निपुराण।

(३) सतोबन्धुमसति निर्विन्दन—ऋगवेद १०, १२९।

असतोमासद्गमय—बृहदाराण्योपनिषद १, ३, २८।

असदेवमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्—छान्दोग्योपनिषद ६, २, १।

एक मत न रहे हो किन्तु काव्य में दोषो के निराकरण के सम्बन्ध में सभी एकमत रहे हैं। काव्य प्रकाशकार मम्मट ने तो स्पष्ट ही कहा है "तद् दोषो शब्दार्थौ सगुणावनलकृती पुनः क्वापि" अर्थात् शब्द और अर्थ काव्य कहलाते हैं, जो दोष-रहित तथा गुण-युक्त हो, अलङ्कार चाहे कभी-कभी न भी हो। आचार्य दण्डी की दृष्टि में छोटा-सा दोष भी क्षम्य नही है[१]। काव्य प्रदीप की भूमिका मे श्री गोविन्द ने कहा है कि यदि काव्य में किसी प्रकार का दोष भी पाया जाता हो तो अलङ्कार आदि की उपस्थिति होते हुये भी आवश्यक साहित्यिक सौन्दर्य की उत्पत्ति नही हो सकती किन्तु इसके विरुद्ध अलङ्कारादि न भी हो तो भी दोष के अभाव में थोडा-बहुत सौन्दर्य तो मिल ही जावेगा। इसी मत का शब्दान्तर द्वारा अभिनव गुप्त ने अभिनव भारती में व्याख्या की है—"एतद्दोषविहीनं श्रुति सुख दीप्तरसं च यदि भवति तावता गुणान्तरैरलकारैश्च हीनमपि काव्य लक्षणयोग व्यभिचारीत्युक्तम।" भामह कुकवित्व को साक्षात मृत्यु की सज्ञा देते हैं—"कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृति-माहुर्मनीषिणः।" लाजीनस (Longinus) ने भी कहा है "Faults are not the less faults because they arise from the heedlessness of genius" लाजीनस की व्याख्या करते हुये R. A Scott James ने "The Making of Literature" में लिखा है "He (Longinus) warns us against bombast, puerility or affectation and the conceits of frigidity"

शब्द और अर्थ दोनो मिलकर काव्य की सृष्टि करते हैं, अतः दोनो काव्य में सर्वथा अभिन्न रहते हैं, तब भी ज्ञान और विश्लेषण के लिये उनकी सत्ता पृथक-पृथक ही समझी जाती है। अतः काव्य दोष में वे शब्द दोष और अर्थ-दोष के नाम से विभक्त हैं। काव्य मे वाक्य का अर्थ समझने के पूर्व ही जब कोई शब्द खटकने लगता है तो वह शब्द दोष, जब उन शब्दों के

---

१. तदल्पमति नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्ट कथ च न।
स्याद्वपुः सुन्दरमपिश्वित्रेणे केन दुर्भगम्॥ —दण्डी

सम्मिलित अर्थ समझने पर कोई बात खटकती है तो वहाँ अर्थ-दोष और तीसरे जब कही-कही काव्य मे जिन भावो और रसो की व्यजना रहती है उसमें एक-दूसरे का विरोध करने वाले भाव या रस जब उत्पन्न हो जाते हैं तो वहाँ रस-दोष माना जाता है। कुछ आचार्य वर्णन-दोष भी मानते हैं जिसमे कि शब्द-अर्थ-रस-दोष से भिन्न वर्णन की अव्यवस्था के कारण उत्पन्न होता है।

अब हम प्राचीन आचार्यों द्वारा मान्य काव्य दोषो का उल्लेख करेगे।

(१) भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में दोषो की सख्या १० मानी है[१]—(क) **अगूढ या गूढ़ार्थ**—जिसमे घुमा फिराकर बात कही जावे, (ख) **अर्थहीन**-असंबद्ध अर्थ, (ग) **अर्थान्तर**—अवर्णनीय का वर्णन, (घ) **भिन्नार्थ** (Antiguity)—जहाँ अभीष्ट दूसरा अर्थ हो और कहा जाय भिन्न अर्थ, (ङ) **एकार्थ**—ऐसे पर्यायो का प्रयोग जिससे अर्थ की किंचित भिन्नता होती है, (च) **अभिलुप्तार्थ**—जब प्रत्येक पाद में वाक्यार्थ सक्षेपतः पूर्ण किया जाय, (छ) **न्यायापेत**—प्रमाणरहित रचना, (ज) **विषम**—छन्दयुता रचना, (झ) **विसन्धि**—जिस रचना में सन्धिहीनता हो, (ञ) **शब्दहीन**—अशब्द योजना।

(२) दण्डी द्वारा गिनाये १३ दोष हैं—निरर्थक, विरुद्धार्थक, अभिन्नार्थक, सशययुक्त, अपेक्षित शब्दहीन, यतिभ्रष्ट, असमवृत्त, सन्धिरहित, तथा स्थान, समय, कला, लोक-न्याय और आगम का विरोध।

(३) भामह ने ३ प्रकार के दोष माने है (१) सामान्य दोष, (२) वाणी दोष, (३) अन्य दोष। सामान्य दोष के अन्तर्गत नेयार्थ, क्लिष्ट, अन्यार्थ, अवाचक, अयुक्त और गूढ़ शब्द, (२) वाणी दोष के अन्तर्गत—श्रुतिदुष्ट, अर्थ दुष्ट, कल्पना दुष्ट और श्रुति कष्ट, एव अन्य दोष के अन्तर्गत—अपार्थ, व्यर्थ, एकार्थ, ससशय,

---

१. अगूढमर्थान्तरमर्थहीन भिन्नार्थमेकार्थमभिप्लुतार्थम्।
न्यायादपेत विषमं विसन्धि शब्दच्युत वै दश काव्यदोषाः—
भरतमुनि—काव्यशास्त्र १७, ८८।

अपक्रम शब्दहीन यतिभ्रष्ट, भिन्नवृत्त, विसन्धि, देश विरुद्ध, काल विरुद्ध, प्रतिज्ञाहीन, हेतुहीन, दृष्टान्तहीन ।

(४) आचार्य वामन ने शब्दगत और अर्थगत दो भेद दोषो के माने है जिनका आगे चल ४ रूपो में विभाजन किया है—पद दोष, वाक्य दोष, पदार्थ दोष और वाक्यार्थ दोष ।

(५) आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश में ३ प्रकार के काव्य दोष बताये हैं, (क) रस दोष, (ख) शब्द दोष, (ग) अर्थ दोष । इनके अन्तर्गत दोषो की सख्या इस प्रकार है—१० रस दोष, ३७ शब्द दोष और २३ अर्थ दोष ।

(६) आनन्दवर्द्धन के ध्वन्यालोक मे दोष के स्थान पर अनौचित्य शब्द का प्रयोग हुआ है ।

(७) डा० गुलाब राय ने 'सिद्धान्त और अध्ययन' मे दोषो का वर्गीकरण इस प्रकार किया है[१] :—

प्रथम वर्ग—क्लिष्टत्व, अप्रतीतत्व, अप्रयुक्त दोष ।

द्वितीय वर्ग—अश्लीलत्व, और ग्राम्यत्व ।

तृतीय वर्ग—अधिकपदत्व तथा न्यूनपदत्व ।

चतुर्थ वर्ग—विपरीतत्व, और श्रुतिकटुत्व ।

पचम वर्ग—च्युत सस्कृति ।

षष्ठ वर्ग—अभवन्मतसम्बन्ध, दूरान्वय, समाप्त पुनरात्त, त्यक्त पुनः स्वीकृत, तथा गर्भित दोषत्व ।

सप्तम वर्ग—अक्रमत्व तथा दुष्क्रमत्व ।

इनके अतिरिक्त कुछ दोष नित्य होते कुछ अनित्य अर्थात् जिनका समर्थन किसी प्रकार नही हो सकता । वे नित्य दोष और जिनका अन्य प्रकार से समर्थन किया जा सकता है अनित्य दोष कहलाते है । इस प्रकार दोषो की संख्या तो अनेक है किन्तु हम अब मुख्य दोषो का ही उल्लेख करेंगे ।

---

१. सिद्धान्त और अध्ययन—गुलाबराय पृष्ठ २४१

शब्द-दोष अथवा पद-दोष

(१) अप्रतीतत्व—कवि कभी-कभी ऐसे शब्दो का प्रयोग काव्य में करता है जिसका शास्त्र विशेष मे पारिभाषिक अर्थ कुछ और होता है और साधारण बोलचाल में कुछ और, जिससे कि साधारण पाठक के लिये वे बाधक सिद्ध होते हैं। जैसे—

(१) "हैं प्रधान के तीन गुण व्याप्त विश्व में जौन।"

यहाँ प्रधान शब्द का अर्थ साधारण पाठक मुख्य लेगा जब कि साख्यशास्त्र का यह पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ प्रकृति होता है।

(२) जग जीव जतीन की छूटी तटी।

यहाँ तटी का अर्थ है हठ योग की त्राटक मुद्रा। इस प्रकार पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग काव्य की बोधगम्यता मे बाधक होता किन्तु सम्भव है जनता का शिक्षा-स्तर उठने पर यह दोप निरन्तर कम होता जाय।

(२) अक्रमत्व—जिस स्थान मे जो शब्द रखा जाना चाहिये उसे उस स्थान पर न रखने से दोष होता है। जैसे—

"विश्व मे लीला निरन्तर कर रहे वे मानवी।"

यहाँ 'लीला' 'मानवी' का विशेष्य है जो कि उसके निकट नही है।

(३) अधिकपदत्व—जहाँ पर अनावश्यक शब्दो का प्रयोग हो कि उनमें से यदि कुछ को निकाल भी दिया जाय तो अर्थ और भाव में अन्तर न पडे। जैसे—

(१) सुनु मातु मयी यह बात अनैसी।
जु करी सुत भर्तृ विनाशिनि जैसी॥

(२) लिपटी पुहुप पराग पट सनी स्वेद मकरन्द।

इन दोनो में 'जैसी' और 'पुहुप' शब्द अनावश्यक हैं, पराग पुष्प का ही होता है।

(४) न्यूनपदत्व—जहाँ अर्थ की अभिव्यक्ति के लिये जितने शब्दो की

आवश्यकता हो उससे कम शब्दो का प्रयोग किया जाय, जैसे—तुलसी का दोहा इसका सुन्दर उदाहरण है—

उत्तम मध्यम नीच गति पाहन सिकता पानि।
प्रीत परिच्छा तिहुँन की वैर व्यतिक्रम जानि ॥

इसमे एक आवश्यक शब्द 'रेखा' छूट गया जिसके अभाव में अर्थ-पूर्ति कठिन-सी हो जाती है।

"पानी पावक पवन प्रभु, ज्यौ असाधु त्यौ साधु।"

इसका अर्थ तो यह है कि पानी, पावक, पवन, प्रभु, साधु और असाधु दोनो के साथ समान व्यवहार करते हैं किन्तु पर्याप्त शब्दो के अभाव मे अर्थ सरलता से नहीं निकल पाता।

(५) प्रतिकूल वर्ण—जहाँ इच्छित रस के प्रतिकूल वर्णों की योजना होती है, जैसे :—

झटकि चढ़ति उतरति अटा नैकु न थाकति देह।
भई रहति नट को बटा अटवी नागर नेह ॥

उपर्युक्त शृङ्गार रसके दोहे मे कोमल वर्णों की योजना के विपरीत टवर्ग प्रचुर पद योजना है जिससे रस बोध में नीरसता आ गयी है।

(६) हतवृत्त या छन्दोभंग—जब छन्द की मात्राओ या वर्णों की संख्या ठीक होने पर भी उसकी गति ठीक न हो अथवा किसी शब्द की बीच में ही यति पडे तो हत वृत्तत्व अथवा छन्दो भग दोष होता है। जैसे :—

(१) सरविस जैहैं छूट परै रोटी के लाले।
तब सब बिदा होयँगे बिस्कुट चाय के प्याले ॥

यहाँ दूसरे चरण में यति भग है।

(२) तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।

इसमें 'तमाल' शब्द के प्रथम अक्षर पर यति होती है।

(५) च्युत सस्कृति—व्याकरण विरुद्ध प्रयोग इसके अन्तर्गत माने गये हैं। यह ५ प्रकार का होता है, लिग दोष, वचन-दोष, कारक, सन्धि और प्रत्यय दोष। जैसे—

(१) मर्म वचन जब सीता बोला।
हरि प्रेरित लछिमन मन डोला ।।
(२) नभ में आप विचरते हैं जो।
हरा धरा को करते हैं जो ।।

(६) अप्रयुक्त—किसी शब्द का उसके प्रचलित अर्थ मे प्रयोग न होकर अप्रचलित अर्थ प्रयोग होना । जैसे—

"पुत्र जन्म उत्सव समय स्पर्स कीन्ह बहु जाय।

यहाँ 'स्पर्स' शब्द का अर्थ 'दान देना' है किन्तु यह अर्थ प्रचलित नही है ।

(७) असमर्थ—किसी शब्द के प्रयोग पर अभीष्ट अर्थ की प्रतीति न होना । जैसे—

'कुज हनन कामिनि करत'

यहाँ 'हनम्' का अर्थ 'गमम्' है और हम् धातु का अर्थ गति भी है किन्तु हनम् शब्द यहाँ पर इस अर्थ को लाने में असमर्थ है ।

(८) निरर्थक—पाद-पूर्ति के लिये अनावश्यक शब्द का प्रयोग करना । जैसे—

सो हैं विचित्र छवि गोप समाज माँ ही।
गावै प्रवीन नट रंग थली यथा ही ।।

यहाँ 'यथा ही' मे 'ही' शब्द निरर्थक है । केवल पाद-पूर्ति के लिए है ।

(९) अनुचितार्थ—जिस शब्द के प्रयोग से अभीष्ट अर्थ का तिरस्कार हो । जैसे—

ह्वैके पशु सम यज्ञ में, अमर होहिं जगसूर।

इस पंक्ति में वीरों की तुलना पशु से की गई है जो कि अभीष्ट अर्थ नहीं देती; साथ ही युद्ध मे शूरवीर स्वेच्छा से मृत्यु को गले लगाता है किन्तु यज्ञ का पशु-विवशता से ।

(१०) निहितार्थ—जहाँ किसी शब्द का अप्रसिद्ध अर्थ में प्रयोग किया जाय । जैसे—

विषमय यह गोदावरी, अमृतन को फल देति।
केसव जीवन हार को दुख असेष हरि लेति॥

विष और जीवन का प्रयोग जल के अर्थ मे हुआ है जोकि अप्रसिद्ध है, विशेष रूप से विष का अर्थ तो पानी प्रसिद्ध नही ही है।

(११) क्लिष्टत्व—ऐसे शब्द का प्रयोग करना जिसका अर्थ कठिनता से खुले। जैसे—

(१) अहि रिपु-पति-प्रिय सदन हैं मुख तेरो रमनीय।

इसका अर्थ है कि तेरा मुख कमल के समान रमणीय है। कमल के लिये रेखाकित शब्दो का प्रयोग हुआ है। अहि=सर्प, रिपु=शत्रु अर्थात गरुण के पति—विष्णु की प्रिय लक्ष्मी का निवास-स्थान कमल है।

(२) 'वेदि नखत ग्रह जोरि अरधकरि, सोई बनत अब खात'॥—सूर

रेखाकित शब्दो से तात्पर्य है विष का। अब देखिये इसका व्यक्तीकरण किस प्रकार कवि ने किया है—

वेद=४+नखत=नक्षत्र=२७+ग्रह=९ इनका योग हुआ ४० अब इसका अरध (अर्द्ध) करने पर हुआ बीस अर्थात् विष।

इस प्रकार का प्रयोग काव्य मे चमत्कार भले ही उत्पन्न करे किन्तु साधारण पाठक के लिये ऐसे शब्द अगम हो जाते हैं।

(१२) श्रुति कटुत्व—शृङ्गार और करुण आदि कोमल रसो मे कानो को अप्रिय लगने वाले शब्दो का प्रयोग।

(१) कवि के कठिनतर कर्म की करते नही हम धृष्टता।
पर क्या न विषयोत्कृष्टता लाती विचारोत्कृष्टता॥

(२) वेदने तू भी भली बनी

आ अभाव की एक आत्मजे और अदृष्टि जनी।
तेरी ही छाती है सचमुच उपमोचिस्तनी॥

यहाँ रेखाकित शब्द रस के देखते हुये कर्ण कटु है। ऐसे प्रयोग रौद्र,

"कूजि उठी चटकाली चहूँ दिसि फैल गयी नभ ऊपर लाली।"

चटकाली एक जाति की चिडिया है और चिडिया चहकती है, कूजती नही, मोर कूजता है।

"बस आनन्द के हँस साहस सों ससि की सी कली चिर कठ लगाई"

यहाँ चन्द्रमा की कली का प्रयोग प्रसिद्ध नही है और कही देखा-सुना भी नही जाता।

(१८) अश्लीलत्व—अश्लील का अर्थ होता है श्रीहीन, अतएव व्रीडा व्यजक, घृणा तथा अमगल व्यजक पद जहाँ होते हैं वही यह दोष माना जाता है। जैसे—

मिची आँख पिय की निरखि वायु दीन तत्काल।

घृणा व्यञ्जक 'वायु दीन' से अधोवायु का स्मरण हो जाता है।

हत्यारी है चितवन प्यारी तुम्हारी,
इसी ने तो है मेरा खून किया। अमंगलजनक

(१९) सन्दिग्धत्व—जिस शब्द के प्रयोग से वाछित और अवांछित दोनों अर्थ निकले। जैसे—

"वंद्या पर करिये कृपा"

'वंद्या' का अर्थ 'वन्दनीय' तथा 'कैद की हुई' दोनो ही हैं।

(२०) समास पुनरोक्तता—वाक्य की समाप्ति में पहले के छूटे हुये विशेषण आदि जहाँ पर रख दिये जाये। जैसे—

ब्रह्मादि देव जब विनय कीन्ह।
तट छीर सिन्धु के परम दीन।।"

ऐसा प्रतीत होता है कि वाक्य "सिन्धु के" पर समाप्त हो गया है किन्तु "परम दीन" द्वारा उसे पुनः उठाया गया है।

तिमिर पारावार में आलोक प्रतिमा है अकम्पित।
आज ज्वाला से बरसता क्यों मधुर घनसार सुरभित।।

इसमे 'सुरभित' विशेषण की आवश्यकता नही है क्योंकि घनसार (कपूर) तो सुरभित होता ही है।

(२१) कष्टार्थत्व—जहाँ किसी वाक्य का अर्थ समझने में कठिनाई पड़े। जैसे—

बरसत जल जिन किरन खैंचि दिनकर जहि घन यह।
यमुना सविता सुता मिली सुर सरिता सो वह॥
करत न को विश्वास कहो या व्यास वचन में।
मूढ़ मृगी समुझै न तऊ जल रवि किरनन में॥

अर्थात् सूर्य अपनी किरणो से खीचे हुये जल की वर्षा करता है न कि मेघ। यमुना भी सूर्य से जन्मी है और वही गगा मे मिलती है। व्यास के इन वचनों को कौन विश्वास नही करता अर्थात् जब वर्षा और यमुना सूर्य से ही जन्मे हैं तब सूर्य की किरणो में जल का होना निस्सन्देह है तथापि मूढ़ हिरनी को सूर्य की किरण मे जल का होने का विश्वास नही होता। यहाँ पर मरीचिका को भ्रम समझना अप्रस्तुत अर्थ है और मुग्धा नायिका का नायक पर अविश्वास प्रस्तुत अर्थ है लेकिन दोनो ही अर्थ सर्वजन-सुगम नही है इसलिये यहाँ कष्टार्थत्व दोष है।

तारागण तापै तापै छौन कल हंसन के।
मुखा सु तापै तापै कदली की छवि है॥
केहरि सुता पै तापै कुन्दन को कुण्ड तापै।
लसति त्रिवेनी मनौ छवि ही कौ छवि है॥
नोने कवि कहे नेही नागर छबीले स्याम।
दरस तिहारें देत चारो फल सबि है॥
कनकलता पै तापै श्री फल सुतापै कबु।
कञ्ज युग तापै चन्द तापै लसो रवि है॥

उपर्युक्त पंक्तियो में राधा के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन है लेकिन सर्वसाधारण क्या विद्वज्जन के लिये भी जल्दी समझने में कठिनाई होगी।

अर्थ दोष

(१) अपुष्ट—ऐसे अर्थ का होना जिसके न होने पर भी अभीष्ट अर्थ की कोई क्षति नहीं होती। जैसे—

उदित विपुल नभ माहि ससि अरी, छोड़ अब मान ॥

यहाँ पर आकाश का विशेषण विपुल अपुष्ट है। चन्द्रोदय ही मान मोचन का कारण हो सकता है। आकाश की विपुलता मान छोडने के कारण की पुष्टि नही करता।

(२) काल-दोष—इसी को अंग्रेजी में Anachronism कहते हैं—

पांडव की प्रतिमा सम लेखौ।
अर्जुन भीम महामति देखौ॥ (रामचन्द्रिका)

राम के मुख से पाडवो का उल्लेख करवाना काल विरुद्ध है।

(३) देश-विरुद्ध दूषण—जो वस्तु जिस देश मे न होती हो उसको वहाँ होने का चित्रण करना दोष है, जैसे केशव ने रामजन्द्रिका में विश्वामित्र के तपोवन मे इलायची, लौग, सुपाडी और केसर आदि का वर्णन किया है जब कि ये फल वहाँ नही होते—

एला ललित लवंग संग पुगीफल।
केसरी को देख बन करी ज्यो कपत है।

(४) दुष्क्रमत्व—लोक अथवा शास्त्र-विरुद्ध क्रम जहाँ हो। जैसे—

'नृप! मो को हय दीजिये अथवा मत्त-गजेन्द्र'

घोडे से पहले हाथी माँगना चाहिये। विकल्प से जो वस्तु माँगी जाती है वह उत्तरोत्तर निम्न श्रेणी की होती है।

(५) पुनरुक्ति—एक शब्द अथवा वाक्य द्वारा अर्थ विशेष की प्रतीति हो जाने पर भी अर्थ वाले दूसरे शब्द अथवा वाक्य द्वारा उसी अर्थ का पुनः प्रतिपादन करना। जैसे—

सहसा कबहुँ न कीजिये, विपद मूल अविवेक।
आपुहि आवत सम्पदा, जहाँ होय सुविवेक॥

पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों मे उसी बात का प्रतिपादन है कि सुविचार से ही सम्पदा मिलती है।

(६) व्याहत—किसी वस्तु का पहले महत्व दिखाकर फिर उसकी हीनता की सूचना देना। जैसे—

दानी दुनिया में बड़े, देत न धन जन हेत।

यहाँ पहले दानियो की महत्ता स्वीकार की गई फिर उनका तिरस्कार किया गया।

(७) प्रसिद्धि विरुद्ध—जो वस्तु जिस बात के लिये प्रसिद्ध हो उसके विपरीत उसका वर्णन करना। जैसे—

"हरि दौड़े रण मे लिये कर में धन्वा बाण"

श्रीकृष्ण चक्र के लिये प्रसिद्ध है, धनुष बाण के लिये नही।

(८) विद्या विरुद्ध—जहाँ धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र आदि के विरुद्ध वर्णन किया जाय। जैसे—

"रद-छद सद नख-पद लगे कहे देत सब बात।"

यहाँ अधरो पर नख रजतों का होना कहा गया है जो कि कामशास्त्र के विरुद्ध है।

(९) सहचर भिन्न—उत्कृष्ट के साथ, निकृष्ट अथवा निकृष्ट के साथ उत्कृष्ट का वर्णन होना। जैसे—

गलित पयोधर कामिनी, सज्जन सम्पत्ति हीन।
दुर्जन के सनमान यह, हिय दाहक है तीन।।

यहाँ कामिनी और सज्जन के साथ दुर्जन का प्रयोग दोष है।

(१०) प्रकाशित विरुद्ध—जो अर्थ अभीष्ट हो वह न निकल कर उसके प्रतिकूल अर्थ निकले—

राज्यासन को लहहु नृप, तेरो जेष्ठ कुमार।

यह ऐसा प्रतीत होता है कि राजा की मृत्यु की कामना की गई हो, क्योंकि राजा के जीवितावस्था मे तो ज्येष्ठ पुत्र को सिंहासन मिल नहीं सकता।

रस-दोष

रस, स्थायीभाव अथवा व्यभिचारी भावो का स्वशब्द द्वारा स्पष्ट कथन न किया जाना रस-दोष है।

१—विभाव और अनुभावो की कष्ट-कल्पना से जहाँ रस की प्रतीति होती है वहाँ दोष है, जैसे कि काव्य प्रकाश मे कहा है—

"कष्ट कल्पनयाव्यक्तिरनुभावविभावयोः।"

उदाहरणार्थ—

चहति न रति यह विगत मति चितहु न कित ठहराय।
विषम दसा याकी अहो कीजै कहा उपाय॥

यहाँ नायिका के विप्रलभ का वर्णन है। 'रति न चहति' आदि अनुभावो द्वारा केवल वियोग ही नही सूचित होता बल्कि करुणा, भयानक और वीभत्स रस भी ज्ञात होता है, अतएव विरहिणी नायिका की प्रतीति कष्ट-कल्पना से होती है।

(२) स्वशब्दवाच्यत्व दोष—भाव जहाँ व्यग न होकर उल्लिखित हो। जैसे—

कौशल्या क्या करती थी।
क्या कुछ धीरज धरती थी।

धीरज सचारी भाव व्यग नही, उल्लिखित है।

(३) अकाण्ड छेदन—असमय मे रस का भग कर देना।

(४) अकाण्ड प्रथन—असमय मे रस का वर्णन करना।

(५) अंग वर्णन—ऐसे रस का वर्णन करना जिससे प्रधान रस को कोई लाभ न हो।

(६) रस की पुनर्दीप्ति—किसी रस का परिपाक हो जाने पर पुनः उसी रस का वर्णन करना।

उपर्युक्त नं० ३, ४, ५, ६ के दोष प्रबन्ध काव्य में ही अधिकतर मिलते

है, साधारण पद्य मे नही। इनके अतिरिक्त भी कई, शब्द, अर्थ और रस-दोष होते हैं जिनका सुप्रसिद्ध साहित्याचार्यों ने अपने काव्य-शास्त्रो में उल्लेख किया हैं, किन्तु मैंने उन सबको न देकर थोडे से का नामोल्लेख किया है। आज के काव्य मे तो उपर्युक्त दोषो को खोजना मानो उस काव्य का अस्तित्व मिटा देना है क्योकि आज तो प्राचीन काव्य शास्त्र के नियमो का यदि उल्लघन नही तो पालन भी नही होता, ऐसी स्थिति मे आज काव्य-दोष ही काव्य के गुण बन गये हैं क्योकि यह प्रयोग का युग है, हर ओर केवल प्रगति और प्रयोग ही दृष्टि-गोचर होता है।

वर्णन दोष

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित मुख्य दोष है—

(१) प्रकृति विरोध—

विन्दुमार के परम पुण्य से उपजा श्यामल विश्व अशोक।
स्निग्ध सघन पल्लव के नीचे छाया चिर शीतल आलोक॥

यहाँ पल्लवो के नीचे प्रकाश का छाना प्रकृति विरुद्ध है क्योकि पल्लवो के नीचे अन्धकार छाता है, आलोक नही।

(२) स्वभाव विरोध—

फाड़-फाड़ कर कुम्भ स्थल मदमस्त गजों की मर्दन कर।
दौड़ा, सिमटा, जमा, उड़ा पहुँचा दुश्मन की गर्दन पर॥

इसमे घोडे की गति का वर्णन है जो स्वाभाविक प्रतीत नही होता।

(३) भाव विरोध—

आँखों में था घन अधकार पद तले विखरे थे अग्नि खंड।
वह चलती थी अंगारों पर लेकर के जलते प्राण पिण्ड॥

इसमे कुणाल से तिरस्कृत होने पर तिष्यरक्षिता के मानसिक भाव और प्रतिशोध की भावना का उचित सामंजस्य नही चित्रित है।

(४) अर्थ विरोध—

लगी कामना.के पक्षीदल करने मधुमय कलरव।
लगी वासना की कलिकायें बिखराने मधु वैभव ।।

कलिका पुष्प की अविकसित अवस्था है। पुष्प सुरभिपूर्ण होता है कलिका नही।

(५) पूर्वापर विरोध—

होती ही रहती क्षण-क्षण में शस्त्रों की भीषण झनकार।
नभ मंडल में फूटा करते वाणों के उल्का अंगार ।।
शस्त्रों का था हुआ विसर्जन न्याय दया को कर आधार।
भू पर नहीं किन्तु मन मे भी बढ़ने लगा राज्य विस्तार ।।

यहाँ प्रथम दो पक्तियो मे शस्त्रो की झकार का वर्णन फिर बाद भी दो पक्तियो मे न्याय दया का आश्रय लेकर शास्त्र का विसर्जन फिर पृथ्वी पर राज्य विस्तार। यहाँ पहले दो पक्तियो का दूसरी दो पक्तियो मे विरोध है।

इसी प्रकार के अनेक प्रकार के वर्णन दोष मिलते हैं जिनमे कतिपय का उल्लेख ऊपर कर दिया गया।

शृंगार रस का रसराजत्व

कतिपय रसज्ञ साहित्य मनीषियो ने शृङ्गार रस को रसराज माना है। इस मत से अधिकाश साहित्यिक तथा साहित्यकार सहमत है। सस्कृत साहित्य के सफल कवि भवभूति ने "एको रसः करुण एव" कहकर करुण रस को ही प्रधानता दी है। भवभूति के उक्त कथन का तात्पर्य यह नही है कि नव-रसो के स्थान मे केवल एक ही रस मानना चाहिए। अपितु उनके इस कथन का तात्पर्य यह है कि नवो रसो के अन्तर्गत यदि कोई रस प्रधान हो सकता है तो एक करुण रस ही है। इस दृष्टि से भवभूति के शब्दो मे करुण रस को रस-राज मानना उपयुक्त ठहरता है। किन्तु यहाँ पर यह बात विचारणीय है कि भवभूति ने स्वय करुण रस को रस-राज की उपाधि देने का प्रयास नही किया है। उनका लक्ष्य था करुण रस की उत्कृष्टता को प्रतिष्ठापित करना न कि उसके रस-राजत्व को सिद्ध करना।

करुण रस की उत्कृष्टता स्वीकार करते हुए शृङ्गार रस को रस-राज की उपाधि देना अत्यन्त उपयुक्त एव समीचीन प्रतीत होता है। रस राज शब्द का अर्थ है रसो का राजा। नवो रसो का राजा वही रस हो सकता है। जिसका क्षेत्र विस्तृत हो तथा जिसमे अधिकाधिक रसों का अन्तर्भाव सम्भावित हो। शृङ्गार रस मे उपर्युक्त दोनो तथ्यो का समावेश हो सकता है। स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव तथा सचारी भाव आदि रस की इन चारो अवस्थाओ की दृष्टि से शृङ्गार रस का क्षेत्र अन्य रसो की अपेक्षा अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत है।

शृङ्गार रस मे काम-वासना, प्रेम और सौन्दर्य इन तीन तत्वो का सन्निवेश रहता है। काम, प्रेम और सौन्दर्य मे से प्रत्येक का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। ससार के समस्त प्राणी सौन्दर्य-प्रिय होते हैं। सौदर्यानुभूति मानव-जीवन की निधि है। अतः शृङ्गार उन तत्वो पर आधारित है जिनकी सीमा किसी भी दशा मे आबद्ध नही हो सकती। यही कारण है कि शृ गार का क्षेत्र अत्यन्त विकसित परिलक्षित होता है।

आलम्बन, आश्रय तथा उद्दीपन की दृष्टि से अन्य रसो की अपेक्षा शृङ्गार का क्षेत्र विस्तृत है। नायिका और नायक के भेदोपभेदो की सख्या साहित्य मर्मज्ञो ने अत्यधिक वर्णित की है। इसके अतिरिक्त उनके हाव-भाव और शारीरिक चेष्टाए भी अगणित मानी गई हैं। शृ गार रस के जितने सचारी भाव हैं उतने अन्य रसो में किसी के नही हैं। इन्ही दृष्टियो से साहित्य शिल्पियो ने शृङ्गार रस को रसराज माना है।

शृङ्गार रस को रसराज मानने का कारण और भी है। शृङ्गार रस के दो पक्ष हैं—१—सयोग २—वियोग। उपर्युक्त दोनो मे नायक-नायिका की मनःस्थितियाँ साहित्य-शास्त्र में भिन्न-भिन्न रूपो में वर्णित की गई हैं। इस प्रकार इन दोनो पक्षों के होने से शृङ्गार का क्षेत्र अत्यन्त परिवर्धित हो गया है। सयोग और वियोग शृङ्गार मे उद्भूत मन.स्थितियो का उल्लेख पूर्ववर्ती अध्यायो में किया जा चुका है अतएव यहाँ पर उनके परिगणन की आवश्यकता

नही है । अतः श्रृङ्गार को रसराज मानना अत्यन्त समीचीन प्रतीत होता है ।

भोजदेव ने 'श्रृङ्गार प्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना की है जिसमें श्रृङ्गार के समस्त अवयवो और गुणो का वर्णन किया है । भोजदेव ने श्रृङ्गार रस को ही प्रमुखता प्रदान की है । उन्होने श्रृङ्गार के विषय मे कहा है :—

"श्रृंगारमेव रसनाद्रसमान नाम:"

अर्थात् समस्त रसो मे श्रृङ्गार रस ही प्रमुख है ।

श्रृङ्गार रस इतना व्यापक है कि उसमे अधिकाधिक रसो का अन्तर्भाव हो जाता है । हास्य, अद्भुत और शान्त रस का श्रृगार के सयोग पक्ष में तथा करुण और भयानक रस का अन्तर्भाव श्रृङ्गार के वियोग पक्ष मे हो जाता है ।

किसी चन्द्रमुखी नायिका की मृदु-मस्कान तथा उल्लासपूर्ण हास सयोग श्रृगार मे उद्दीपन का कार्य करता है । अद्भुत रस का स्थायीभाव 'विस्मय' है । "पत्रा ही तिथि पाइहै" बिहारी के इस वाक्य के अनुसार चन्द्रमुखी कामिनी के देदीप्यमान मुख मण्डल को देखकर नायक के हृदय मे चन्द्रमा का जो भ्रम होता है वह विस्मय मिश्रित है । अत अद्भुत रस का भी अन्तर्भाव सयोग श्रृगार के अन्तर्गत हो जाता है ।

काम वासना की तृप्ति के अनन्तर नायक तथा नायिका के हृदय मे कुछ देर तक के लिये काम-वासना प्रवृत्ति का आविर्भाव रहता है । उस काल मे ऐन्द्रिक शैथिल्य के कारण शान्तरस का उदय होता है । अतः सयोग श्रृङ्गार के अन्तर्गत शान्तरस का भी अन्तर्भाव हो जाता है ।

उपर्युक्त दृष्टिकोणो से श्रृगार को रसराज कहना अत्यन्त उपयुक्त एवं समीचीन है । वस्तुत. जिस रस मे अधिकाधिक मनोभावो का दिग्दर्शन होता है तथा जिसमें अन्यान्य रसो को अपने मे अन्तर्भूत कर लेने की क्षमता है वही रस रसराजत्व को उपाधि से विशिष्ट माना जा सकता है । श्रृङ्गार रस में उपर्युक्त दोनो गुणो का समावेश है । अतः सभी दृष्टि कोणो से उसे रसराज कहने में कोई भी आपत्ति नही हो सकती ।

———

सहायक पुस्तकों की सूची

रस सिद्धान्त—डा० नगेन्द्र, काव्यशास्त्र की रूप रेखा—श्यामनन्दन शास्त्री, अलकार मीमासा—मुरली मनोहर प्रसाद सिह, अलकार प्रदीप—डा० उमेश चन्द्र पाडेय, काव्यत्म मीमासा—डा० जयमन्त मिश्र, वक्रोक्ति और अभिव्यजना—रामनरेश वर्मा, काव्य प्रकाश (मम्मट कृत)—आचार्य विश्वेश्वर, अलकार चन्द्रिका - लाला भगवानदीन, अलकार प्रकाश—राम बिहारी शुक्ल, अलकार प्रकाश और पिगल कौमुदो—आर्येन्द्र शर्मा, अलकार प्रबोध—डा० शम्भूनाथ पाडेय, अलकार मुक्तावली—देवेन्द्रनाथ शर्मा, अलकार रत्न—ब्रजरत्नदास, काव्यकला और शास्त्र—डा० रागेय राघव, काव्य के रूप—गुलाब राय, काव्य कौमुदी—श्रीधरानन्द, काव्य धारा—डा० गोपीनाथ तिवारी, काव्य में अप्रस्तुत योजना—रामदहिन मिश्र, काव्य विमर्श—रामदहिन मिश्र, काव्य विवेचन—देशराज सिह भाटी, काव्य विवेचन—डा० ऊषा गुप्ता, काव्य शास्त्र—डा० भगीरथ मिश्र, काव्य विवेचन—सुरेश चन्द्र, काव्य शास्त्र का आलोचनात्मक अध्ययन—डा० शम्भूनाथ पाडेय, काव्य समुदाय—अशोक कुमार सिह, काव्य समुदाय और वाद—अशोक कुमार सिह, काव्याग कल्पद्रुम—प्रभात शास्त्री, काव्याग कौमुदी १—३ भाग—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, काव्याग प्रकाश—शुकदेव दुबे, काव्यानुशीलन—बलदेव उपाध्याय, छन्द विज्ञान की व्याख्या—हरिशकर शर्मा, छन्दोहृदय प्रकाश—मुरलीधर, रस छन्द अलकार—डा० सावित्री शुक्ला, रस साहित्य और समीक्षाये—हरिऔध, रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण—डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित, हिन्दी अलकार साहित्य—डा० ओमप्रकाश, हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—डा० भगीरथ मिश्र।